केनोपनिषद् भाषा टीका सहित, क़ीमत=)

सामवेदीय तलवकार शाखीय भाषा टीका सरल मध्य देशी हिन्दी भाषामें है—जिसको पण्डित यमुनाशङ्कर ने राजशास्त्री मिहिरचन्दकी सहायता से अनुवाद कियाहै इसमें भी पदोंके अन्वय पूर्वक भावार्थ स्पष्ट कियाहैं और ऐसा टीका कियाहै कि अल्पज्ञ मनुष्यों के भी समझ में आजावे ॥

ईशावास्य उपनिषद्भाषा टीकास[illegible])॥

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्म[illegible] सहित—जिस में मन्त्रों के अर्थ समझने [illegible] अन्वय किये गये और फिर पदार्थकी रीति पर सम[illegible] भावार्थ स्पष्ट किया गया ॥

प्रश्नोपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत=)

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मणकी भाषाटीका सहित—इस में भी सब ऊपर के लिखेहुये अलङ्कारहैं शिष्य के पूछे हुये अच्छे प्रश्नों का उत्तर गुरूने बताकर ब्रह्मरूप लखायाहै ॥

मांडूक्योपनिषद्भाषाटीका सहित,कीमत॥=)

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित—जिसमें ॐकार स्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्म और आत्माकी अभेदताका निरूपण चार प्रकरणों में अच्छी तरह से कियाहै ॥

कठवल्लीउपनिषद् भाषाटीकासहित,क़ीमत=)॥

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मणकी भाषाटीका सहित—इसमें

Dedicated to my most worthy patron and friend Baboo Janki Prasada Bhargava, Assistant Inspector of Schools, Western Division, Oudh Province, Lucknow.

DATED LUCKNOW: } ZALIM SINGH.
The 20th Septr. 1900.

श्रीगणेशायनमः ॥

सांख्यकारिका तत्त्ववोधनीटीका ॥

दो० श्रीकपिल महामुनीको। प्रणवौं वारंवार ॥
जगदुद्धारकहेतु जिन। कियोसांख्यपरचार १
ताकोशिष्यमुनिआसुरि। पञ्चशिखाताजान॥
जिनयहसांख्यतंत्रका। प्रकटिकियोविज्ञान२
संप्रदाय जिनमें भयो। ईशकृष्ण जसनाम ॥
छन्दआर्य्यामेंकियो। सांख्यकारिकाग्राम ३
सांख्यकारिकापरसकल। भाषाकरूंवखान॥
जे अवलोकन असकरैं। मिटैसकल अज्ञान ४
पुरी अयोध्याके निकट। अकबरपुरहैग्राम॥
जन्मभूमि ममजानतू। जालिमसिंहहिनाम ५

अब ग्रन्थका आरंभ करते हैं॥ सृष्टिके आदिकालमें ब्रह्माजी के सातपुत्र महर्षि होतेभये तिनके ये नामहैं सनक १ सनन्दन २ सनातन ३ आसुरि ४ कपिल ५ वोढु ६ पञ्चशिखा ७ तिनमें से कपिलजी जन्मसेही सिद्धभये क्योंकि उनके जन्मके साथही धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य उत्पन्न हुये उन्हों ने संसारी लोकों को अविद्यारूपी समुद्र में डूबते देखकर करुणाकर उनके उद्धार के लिये सांख्यशास्त्ररूपी नौका को निर्माण किया ताकि ऐसी नौकापर

सवारहो शीघ्र पारहोजावें और नित्य सुख जो मोक्ष है उस को प्राप्तहों इस सांख्यशास्त्र में पञ्चविंशति तत्त्वोंका ज्ञानही मुख्य मुक्तिका साधन है तिसज्ञान को कपिल भगवान्जीने प्रथम आसुरिऋषिको जो कि ब्रह्माजीके पुत्र हैं उपदेश किया॥ पञ्चविंशतितत्त्वज्ञोयत्रतत्राश्रमेवसेत् जटीमुण्डीशिखीवापिमुच्यतेनात्र संशयः १ पचीस तत्त्वों के ज्ञानवालापुरुष किसी आश्रम में हो चाहै वह जटीहो याने जटारखाये हो चाहै वह मुण्डित हो चाहै परमहंसहो चाहै वह शिखी हो याने शिखा यज्ञोपवीत को धारण किये हो अवश्य वह मुक्त होजाता है इसमें कुछ संशय नहीं है आसुरिमुनिने पंचशिखा मुनिको पचीस तत्त्वोंके ज्ञानका उपदेश किया और पंचशिखाके शिष्य परंपराकरके ईश्वरकृष्ण श्रेष्ठ बुद्धिवाले ऋषिको उपदेश किया जिन्होंने उसको आर्य्याछन्द में निर्माण करके इस ग्रन्थको प्रकाश किया जो जिज्ञासु इस ग्रन्थको पढ़कर धारणकरैगा वह भी पंचविंशति तत्त्वों के ज्ञानको प्राप्तहोकर संसारसागर से पारहोजावैगा इसमें संदेह नहीं है॥

मूलम्॥

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासातदभिघातकेहेतौ॥
दृष्टेसाऽपार्थाचेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥ १॥

पदच्छेदः॥

दुःखत्रयाभिघातात् जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ दृष्टे सा अपार्था चेत् न एकान्तात्यन्ततः अभावात्॥

अन्वयः	पदार्थ
दुःखत्रयाभिघातात्	दुःखत्रयका नाश होने से
तदभिघातके	तिस दुःखत्रयके नाशक
हेतौ	कारणसांख्यशास्त्र विषे
जिज्ञासा	जिज्ञासा
+ कार्या	करनी चाहिये
चेत्	अगर
दृष्टे	दृष्टउपायोंसे दुःखत्रयका नाश होजाय
+ तदा	तब
+ सा	वहजिज्ञासा
अपार्था	व्यर्थ होगी
एकान्तात्यन्ततः	दुःखत्रयकीअवश्य नित्यनिवृत्तिके
अभावात्	अभावसे
न	ऐसानहीं

भावार्थ॥

यदि संसारमें दुःख न होता अथवा दुःख होता परंतु उसके दूरकरने की इच्छा न होती और अगर इच्छा भी होती परंतु वह नाश होनेको अशक्य होता तब भी सांख्यशास्त्रविषयणी जिज्ञासा किसी को न होती क्योंकि जब नाशही नहीं होसक्ता तब केवल जिज्ञासामात्र क्या फल करसक्ती? अथवा दुःख नित्य होता और तिसके नाशका उपाय कोई न जानता तब भी जि-

ज्ञासा न होती अगर दुःख नाश होसक्ता है तो शास्त्रविषयक ज्ञान उसके नाशका उपाय है या और कोई सुगम उपाय है यदि सुगम उपाय होता तब भी सांख्यशास्त्रविषयिणी जिज्ञासा न होती सो ऐसा तो नहीं किंतु दुःखभी जगत् में है और तिसके दूरकरने की इच्छा भी सब जीवों को है यह तो प्रत्यक्ष देखने में आता है इसवास्ते दुःखत्रयके नाशकी जिज्ञासा सबको है इसी पर मूलकारिका में कहा है ॥ दुःखत्रयाभिघातादिति ॥ आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, इन भेदों करके तीन प्रकार का दुःख संसार में विद्यमान है तिनमें से आध्यात्मिक दुःख शारीरक और मानसभेद करके दो प्रकारका है दोनोंमेंसे वात पित्त कफ की न्यून अधिकतासे जो ज्वरादिक रोग उत्पन्न होते हैं उनकरके जो शरीरमें दुःख होता है उसका नाम शारीरक दुःख है और प्रियवस्तु के वियोगसे और अप्रियवस्तु के संयोगसे जो मनमें खेद होता है उसीका नाम मानस दुःख है शारीरक मानस भेद करके दो प्रकारका आध्यात्मिक दुःख कहागया है अब आधिभौतिक दुःखको दिखाते हैं आधिभौतिक दुःख चारप्रकार का है भूतों के समुदाय से जो दुःख होवै उसका नाम आधिभौतिक दुःख है सो भूतोंका समुदाय जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज भेदसे चारप्रकार का है जरायुज वे कहलाते हैं जो जेरसे उत्पन्न होतेहैं मनुष्य पशु मृगादिक ये जरायुज हैं ॥ और जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं वह अण्डज हैं पक्षी सर्पादिक ये अण्डे को फोड़कर उत्पन्न होते हैं इसवास्ते इनका नाम अण्डज है जो पसीने से उत्पन्न होते हैं उनका नाम स्वेदज है जुवां मच्छर खटमलादिक ये स्वेदज कहलाते हैं और जो पृथिवी को ऊर्ध्वभेदन क-

रके उत्पन्न होते हैं उनका नाम उद्भिज है वृक्ष वेलादिक इनका नाम उद्भिज है इन चारप्रकार के भूतों के ग्रामसे जो दुःख होता है इसीका नाम आधिभौतिक दुःख है और देवतोंसे जो खेद होवै उस दुःखकानाम आधिदैविक है जैसे सूर्य्य चन्द्रमा आदिग्रहोंसे और शीत उष्ण वर्षा आदिकों से जो जीवोंको खेद होता है उसका नाम आधिदैविक दुःख है इनतीन प्रकारके दुःखोंका नाश होसक्ता है इसी वास्ते तिन तीन दुःखोंका नाशक जो सांख्यशास्त्र है तिसकी सबको जिज्ञासा करनी चाहिये ॥प्र०॥ दृष्टेसाऽपार्था ॥ यदि दृष्ट उपायों से दुःखत्रयका नाश होजावै तब सांख्यशास्त्रविषयणी जिज्ञासा व्यर्थ है सो दिखाते हैं आध्यात्मिक दुःख जो शारीरक है तिसकी निवृत्ति औषध आदिकों के सेवन से होजावैगी और मानसदुःख की निवृत्ति प्रियवस्तुके संयोग और अप्रियवस्तुके परिहारसे होजावैगी और आधिभौतिक दुःखकी निवृत्ति शरीरकी रक्षा के उपायों से होजावैगी और आधिदैविक दुःख की निवृत्ति मणिमंत्रादिकों करके होजावैगी पूर्वोक्त सुगम उपायों करके जब कि त्रिविध दुःख की निवृत्ति होसक्ती है तब फिर सांख्यशास्त्रविषयणी जिज्ञासा करनी व्यर्थ है ॥ उ० ॥ नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥ दृष्ट उपायोंसे यद्यपि त्रिविध दुःख की निवृत्ति होसक्ती है तथापि अत्यन्त निवृत्ति नहीं होसक्ती है ॥ सो दिखाते हैं ॥ शारीरकरोग औषधी के सेवन से दूरहोसक्ता है परंतु एकवार दूर होकर भी फिर कालान्तरमें होजाता है और ऐसा नियमभी नहीं है कि अवश्यही इस औषध के सेवन से इस रोग की निवृत्ति होजावैगी किन्तु बहुत से औषधी करते २ हारजाते हैं उनके रोग की निवृत्ति नहीं होती है इसी तरह प्रियवस्तु के

संयोगसे और अप्रिय वस्तुके परिहारसे एकवार मानस दुःख की निवृत्ति होभीजावैगी परन्तु ऐसा नियम नहीं होसक्ताहै कि सदैव प्रियवस्तुका संयोग वनारहै और अप्रिय वस्तुका वियोग वनारहै किन्तु कभी संयोग और कभी वियोग होतेही रहते हैं क्योंकि जिसका संयोग होता है अवश्यही फिर किसी कालमें तिसका वियोग भी होता है और जिसका वियोग होता है फिर किसी कालमें तिसका संयोग भी होता है इस वास्ते दृष्ट उपायों करके मानस दुःख की अत्यन्त निवृत्ति नहीं होसक्ती है और आधिभौतिक दुःख की अत्यन्त निवृत्ति भूतोंसे रक्षाद्वारा नहीं होसक्ती है क्योंकि सदैव काल रक्षाके उपाय वन नहीं सक्ते हैं इसी तरह आधिदैविक दुःख की निवृत्ति भी सदैव काल नहीं होसक्ती है क्योंकि प्रथम तो ग्रहोंका फल अवश्यही भोगना पड़ता है यदि किसी मंत्रके जपसे एकग्रहके दुःख की निवृत्ति होभीजावे फिर दूसरे कालमें अवश्य तिसी ग्रहका फल दुःख भोगना पड़ता है और इसीतरह शीत वातादिजन्य दुःखकी निवृत्ति भी नहीं होसक्ती है क्योंकि वह भी सब आगमापायी हैं पूर्वोक्त युक्तियों से त्रिविध दुःख की निवृत्ति दृष्ट उपायों करके अर्थात् इस उपाय करके इस दुःख की निवृत्ति अवश्यही होगी और निवृत्ति होकर फिर नित्य निवृत्त रहैगी ऐसा नियम भी नहीं है किन्तु इसप्रकार के नियम के अभाव होने से दृष्ट उपायों से त्रिविधदुःखकी निवृत्ति नहीं होसक्ती है इस वास्ते सब पुरुषों को पंचविंशति तत्त्वोंके ज्ञान के लिये सांख्यशास्त्र की जिज्ञासा करनी उचित है ॥ १ ॥

मूलम् ॥

**दृष्टवदानुश्रविकःसह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः॥
तद्विपरीतःश्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥ २ ॥**

पदच्छेदः ॥

दृष्टवत् आनुश्रविकः सः हि अविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
दृष्टवत्	= दृष्ट उपाय के तुल्यही	तद्विपरीतः	= तिसदृष्टऔर आनुश्रविक उपायसे विपरीत उपाय
आनुश्रविकः	= वैदिक उपाय भी है		
हि	= क्योंकि	श्रेयान्	= अत्यन्त श्रेष्ठ है
सः	= वह भी		
अविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः	= अशुद्धि नाशऔर अतिशय इन तीनों दोषों कर केयुक्त है	व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्	= व्यक्तमहदादि अव्यक्त प्रधानज्ञः पुरुष के ज्ञान होने के कारण

भावार्थ॥

त्रिविध दुःख की अत्यन्त निवृत्ति का नामही पुरुषार्थ है सो

त्रिविध दुःख की अत्यन्त निवृत्ति लौकिक उपाय धनादिक कर-
के नहीं होसक्ती है क्योंकि धनादिकों के क्षयहोने पर फिर दुःख
की प्रवृत्ति होती है अर्थात् धन करके दुःख के निवृत्ति होनेसे प-
श्चात् धनके नाश होनेपर फिर दुःखकी उत्पत्ति देखनेमें आतीहै॥
प्र०॥ दृष्ट उपायसे त्रिविध दुःख की निवृत्ति मतहो परंतु वैदिक
उपाय से होगी तहां वेद भगवान् कहते हैं॥ अपामसोमममृता
अभूमागन्मज्योतिरविदामदेवान् किन्नूनमस्मान्कृणवदरातिः कि
मुधूर्तिरमृतमर्त्यस्य १ अपामसोमममृताअभूम॥ वयंसोमंअपाम॥
देवता कहते हैं कि हम सोमवल्ली को यज्ञमें पानकरके अमर हो-
गयेहैं॥ अगन्मज्योतिः॥ तिस सोमके पान करने से ज्योति जो
स्वर्ग है तिसको प्राप्त होंगे॥ "देवान् अविदाम"॥ फिर देवसम्बन्धी
भोगों को भी प्राप्त होंगे॥ किन्नूनं॥ अस्मान् कृणवत् अरातिः॥
निश्चय करके अराति जो शत्रुहै वह हमारा किंकृणवत् क्या कर-
सक्ताहै" किमु धूर्त्तिरमृतस्यमर्त्यस्य॥ धूर्त्ती जो जरा अवस्था है
सो हम लोकोंको जो अमरताको प्राप्त भयेहैं क्या करसक्ती है॥ स-
र्वान् लोकान् जयति मृत्युंतरतिपाप्मानं तरति ब्रह्महत्यांतरतियो-
ऽश्वमेधेनयजत" इति॥ जो पुरुष अश्वमेध यज्ञको करताहै वह
संपूर्ण लोकोंको जय करलेताहै मृत्युको तर जाताहै पापों से छूट
जाता है ब्रह्महत्या से भी निवृत्त होजाताहै॥ वेद में अश्वमेधादि
यज्ञों का फल भी "एकान्तात्यन्तिक" कहाहै जब वेदोक्त उपायोंसे
अत्यन्त त्रिविध दुःखकी निवृत्ति होही जावैगी तब फिर सांख्य-
शास्त्रविषयणी जिज्ञासा करनी व्यर्थ है॥उ०॥ दृष्टवदानुश्रविकः॥
गुरुमुखादनुश्रवतीत्यनुश्रवोवेदः॥ गुरुमुख से जिसका परम्परा-
द्वारा श्रवण होता चला आयाहै उसीकानाम "आनुश्रविक" है

उसी को वेदभी कहते हैं सो वेदोक्त उपाय भी लौकिक उपायोंके तुल्यही हैं जैसे लौकिक उपाय हिंसा अशुद्धि नाश और अतिशयता करके युक्त है तैसेही वेदोक्त उपायभी अविशुद्धिक्षयता अतिशयता करके युक्त हैं इसी को अब दिखाते हैं यज्ञ में पशुका वध अवश्यही होता है क्योंकि उसके विना यज्ञ होही नहीं सक्ता है इसवास्ते हिंसारूप अशुद्धि करके वह युक्त है सो कहाभी है ॥ पट्शतानिनियुज्यन्ते पशूनांमध्यमेऽहनि अश्वमेधस्यवचनाद् नानिपशुभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥ वेदमें जो अश्वमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा है तिस आज्ञा से दुपहर के समय तीनकम छैसौ पशुवोंकी हिंसा यज्ञ में की जाती है यद्यपि यज्ञकरना श्रुति स्मृति करके धर्म कहागया है तथापि हिंसाकरके युक्त होने से अशुद्धिकरके युक्त है क्योंकि हिंसासे ज्यादा कोई और वस्तु अशुद्ध नहीं है और क्षय करके जो युक्त है उसको दिखाते हैं ॥ बहूनीन्द्रसहस्राणि देवानांच युगेयुगे कालेनसमतीतानि कालोहिदुरतिक्रमः ॥ १ ॥ देवतों के युगमें कालकरके हजारों इन्द्र व्यतीत होगये हैं कालका जीतना बड़ा कठिन है किसीकरके उसका उल्लंघन नहीं कियाजासक्ता है इसलिये इन्द्रादिक देवतों के नाश होने से वैदिक कर्म का फल क्षय करके युक्त है ॥ स्वर्ग में अपने से अधिक ऐश्वर्यवान् को देख कर असहनतारूपी दुःख होता है और अपने से कम ऐश्वर्यवाले को देखकर अभिमान होता है इसप्रकार की अतिशयता करके भी वैदिक कर्म युक्त है इसीपर मूल में कहा है कि आनुश्रविक उपाय भी दृष्ट उपायों के ही तुल्य है इसवास्ते वह भी श्रेयका साधननहीं ॥ प्र ॥ तब फिर कौन श्रेयका साधन है ॥ उ ॥ तद्विपरीतः श्रेयान् ॥ तिन दृष्ट और आनुश्रविक उपायों से विलक्षण जो उ-

पाय है सो श्रेयका साधन है॥ सो दिखाते हैं॥ व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्॥ महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा एकादश इन्द्रिय पंच महाभूत इनका नामव्यक्त है और अव्यक्तनाम प्रधान का है॥ज्ञ॥ नामपुरुष जीवात्मा का है इनपञ्चविंशति तत्त्वों के स्वरूप का जो ज्ञान है वही श्रेयका साधन है अर्थात् पचीसतत्त्वों के ज्ञानसे ही पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है २ अब व्यक्त, अव्यक्त, और पुरुष के विशेष स्वरूप को दिखलाते हैं॥

मूलम्॥

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याःप्रकृतिविकृतयःसप्त॥
षोडशकस्तुविकारोन प्रकृतिर्नविकृतिःपुरुषः॥ ३॥

पदच्छेदः॥

मूलप्रकृतिः अविकृतिः महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त षोडशकः तु विकारः न प्रकृतिः न विकृतिः पुरुषः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
मूलप्रकृतिः	= महत्तत्त्वादिकोंकामूल कारणप्रधानहै	अविकृतिः	= किसीका भी कार्य नहीं है
		महादाद्याः	= महत्तत्त्वादि
		सप्त	= सातहैं
+सा	= वह प्रधान	+ताः	= वे

पद	अर्थ	पद	अर्थ
प्रकृतिविकृतयः	= कारणरूप भीहैंऔरकार्यरूपभीहैं	विकारः	= कार्यहैं कारण नहींहै
		पुरुषः	= पुरुष
षोडशकःतु	= एकादशइन्द्रियऔर पञ्चमहाभूतयेसोलह	नप्रकृतिः	= नकिसीकाकारणहै
		+च	= और
		नविकृतिः	= नकार्यहै

भावार्थ ॥

प्रकृतिविकृतिरूप जो सात महत्तत्त्वादिहैं तिनका मूल कारण होनेसे तिसकोमूलप्रकृति कहतेहैं तिसकानाम प्रधानभीहै सो मूल प्रकृति अविकृतिहै अर्थात् किसीकाकार्य्य नहीं है॥महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त॥महत्तत्त्वादि सातहैं वेप्रकृति रूपहैं और विकृतिरूप भीहैं अर्थात् कारणभी हैं और कार्यभी हैं॥ सो दिखाते हैं॥ प्रधानसे प्रथम महत्तत्त्व उत्पन्न होता है इसीवास्ते वह प्रधान का कार्यहै और महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न होताहै इस वास्ते अहंकार का कारणहै अहंकारमहत्तत्त्व से उत्पन्न होताहै इसवास्ते महत्तत्त्व का कार्यहै और पंचतन्मात्रा को अहंकार उत्पन्न करताहै इसलिये अहंकार कारणभी है फिर शब्द तन्मात्रा अहंकारसे उत्पन्न होती हैं इसलिये अहंकार का कार्यहै और आकाश को उत्पन्न करती है इसवास्ते तिस्का कारणभीहैतैसे स्पर्शतन्मात्रा अहंकारसे उत्पन्न होती है इसलिये अहंकार का कार्यहै वही फिर वायु को उत्पन्न करती है इसवास्ते कारणभी है इसी तरह गन्ध तन्मात्रा अहंकार से उत्पन्न होतीहै सो अहंकार का कार्यहै और पृथिवी को उत्पन्न करती है इसवास्ते पृथिवी का कारणहै और रूप तन्मात्रा अहं-

कारसे उत्पन्न होती है इसलिये अहंकार का कार्यहै जलको उत्प-न्न करती है इसलिये तिस्का कारणहै इसी रीतिसे महत्तत्त्वादिक सात प्रकृति विकृति रूपहैं ॥ षोडशकश्चविकारः ॥ षोडश याने सो-लह विकारहैं अर्थात् कार्यहैं कारण नहीं हैं ॥ सो दिखाते हैं ॥ पांचज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय एकमन और पांच महाभूत ये सोलह कार्यहैं प्रकृति रूप कारण किसी के नहीं हैं आगे पृथिवी आदिभूतोंके भी गोघटादि रूप विकार याने कार्य हैं और गोघ-टादिकों केभी दुग्ध दधि आदि विकारहैं तबभी वे पृथिवी रूपही विकार समझेजाते हैं क्योंकि पृथिवी आदिकों से अन्यरूप को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ किंतु पृथिवी आदिकों के विकार पृथिवीआ-दि रूपही रहते हैं इसीवास्ते उनमें पार्थिवादि व्यवहार होता है और यहां पर जो अन्य तत्त्वका कारण हो वही एक तत्त्व कहाजा-ताहै जैसे महत्तत्त्व से अन्यरूप होकर अहंकार एक तत्त्व उत्पन्न हुआ तिस्का कारण महत्तत्त्व होसक्ताहै और पृथिवी से पृथिवीरूप घट भयाहै वह पृथक् तत्त्वनहीं है किंतु पृथिवी रूपहीहै इसवास्ते भूतोंको अप्रकृति कहाहै और जैसे घटादिक स्थूल रूपसे स्थितहैं और इन्द्रियों करके ग्राह्यहैं तैसे पांच स्थूल भूतभी स्थूलरूप से स्थित और इन्द्रियों करके ग्राह्यहैं इसवास्ते वे पृथक् तत्त्व नहीं हो-सक्ते ॥ नप्रकृतिर्न विकृतिःपुरुषः ॥ और पुरुष न किसी का कार्य है और न किसी का कारण है ३ ॥ प्र ॥ व्यक्तअव्यक्त और ज्ञः इन तीन पदार्थों की किन प्रमाणों करके सिद्धि होती है अर्थात् किस प्रमाण करके किस पदार्थकी सिद्धिहोती है ? लोक में प्रमेयकी सिद्धि प्रमाण के आधीन है यह नियमहै इसवास्ते प्रमाणों का निरूपण करना भी अवश्य है ॥

मूलम् ॥

दृष्टमनुमानमाप्तवचनंचसर्वप्रमाणसिद्धत्वात् ॥
त्रिविधंप्रमाणमिष्टम् प्रमेयसिद्धिःप्रमाणाद्धि ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ॥

दृष्टम् अनुमानम् आप्तवचनम् सर्वप्रमाणसिद्धत्वात् त्रिविधम् प्रमाणम् उक्तम् प्रमेयसिद्धिः प्रमाणात् हि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सर्वप्रमाण सिद्धत्वात्	सर्वप्रमाणोंकी सिद्धि होनेसे	च	और
		आप्तवचनम्	शब्द प्रमाण
		इष्टम्	स्वीकार है
प्रमाणम्	प्रमाण	हि	क्योंकि
त्रिविधम्	तीन प्रकारका यानी	प्रमेयसिद्धिः	विषयकी सिद्धि
दृष्टम्	प्रत्यक्षप्रमाण	प्रमाणात्	प्रमाणसे ही
अनुमानम्	अनुमान प्रमाण	+भवति	होती है

भावार्थ ॥

प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीन प्रमाण हैं तीनों में प्रत्यक्ष प्रमाण ज्येष्ठ है श्रोत्र त्वग् चक्षुः जिह्वा घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं और शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं

शब्द को श्रोत्र ग्रहणकरता है अर्थात् श्रोत्रइन्द्रिय करके शब्द का प्रत्यक्ष होता है और त्वगिन्द्रिय करके स्पर्शका चक्षुकरके रूप का जिह्वा करके रसका घ्राणकरके गन्धका ज्ञान होताहै इन पांच ज्ञानेन्द्रियों करके पांच विषयों के ग्रहण का नामहीं प्रत्यक्ष प्रमाण है जिस अर्थ का प्रत्यक्ष प्रमाणकरके या अनुमान प्रमाण करके ग्रहण न हो उसका आप्तवचन करके ग्रहण होता है आप्तनाम यथार्थ वक्ताका है तिसका जो वचन है उसी का नाम आप्तवचन है उसी को शब्दप्रमाण भी कहते हैं यद्यपि प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमान करके देवराज इन्द्र का और स्वर्ग में अप्सरा का ज्ञान नहीं होताहै परंतु आप्तवाक्य से होताहै इसीका नाम शब्द प्रमाणहै॥ और नैयायिक उपमान कोभी पृथक् प्रमाण मानताहै अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान उपमानशब्द ये चार प्रमाण नैयायिक माना है॥ गोसदृशोगवयः॥ गौके तुल्यही गवयभी होताहै, गवय एक वनका पशु होता है किसी ग्रामीण पुरुषने वनके रहनेवाले से पूछा कि गवय कैसा होता है उसने कहा गौके सदृश होताहै सो यह गवय का ज्ञानशब्द प्रमाण करके ही सिद्ध होताहै इसवास्ते उपमान शब्द प्रमाण केही अन्तर्गत है और कोई अर्थापत्ति को पृथक् प्रमाण मानकर पांच प्रमाण मानताहै सो अर्थापत्ति भी पृथक् प्रमाण सिद्ध नहीं होसक्ता किंतु अनुमान केही अन्तर्गत है और अर्थापत्ति प्रमाण दो प्रकारका है एक तो दृष्टार्थापत्ति दूसरा श्रुतार्थापत्ति जैसे जीवित देवदत्त गृहमें नहीं है इस वाक्यसे यह मालूम भया कि अगर जीवित देवदत्त गृहमें नहींहै तो विदेशमें अवश्य होगा ऐसा वोध अनुमान प्रमाण करके भी होसक्ताहै क्योंकि यहां पर गृहाभावही हेतु है वही जीवित देवदत्तकी

स्थितिको विदेश विषे कल्पना कराता है इसवास्ते गृहाभाव हेतु है विदेशस्थत्वसाध्य है इसलिये हेतु करके साध्यकी सिद्धि होजाने से अनुप्रमाण केही अन्तर्भूतहै ॥ पीनोदेवदत्ता दिवानभुंक्ते ॥ स्थूल देवदत्त दिनमें भोजन नहीं करताहै और भोजन से विना स्थूलता होती नहीं इसवास्ते रात्री में भोजन अवश्य करता होगा ॥ अब यहां पर पीनत्व व्याप्यहै और रात्रि भोजन उसका व्यापक है ऐसी व्याप्ति होनेके कारण श्रुतार्थापत्ति प्रमाण भी अनुमान प्रमाण केही अन्तर्भूत होजाता है पृथक् प्रमाण मानना व्यर्थ है और कोई अनुपलब्धि प्रमाणको पृथक् मानताहै उसके मतमें अभावका ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण करके होताहै सो प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्भूतहै क्योंकि इन्द्रियों करकेही विषय का ज्ञान होताहै और इन्द्रियों करकेही तिनके अभावका भी ज्ञान होताहै इसलिये पृथक् प्रमाणके कल्पना करनेकी कोई जरूरत नहीं इसी प्रकार और प्रमाणों को इन तीनों प्रमाणके ही अन्तर्भूत जानलेना इसवास्ते तीनही प्रमाणहैं इन तीनों करकेही सब प्रमाणों की सिद्धि होजाती है ॥ प्रमेयसिद्धिःप्रमाणाद्धि ॥ प्रधान बुद्धि अहंकार पंचतन्मात्रा एकादश इन्द्रिय पंचमहाभूत और पुरुष ये सब पंचविंशति तत्त्वहैं सोई व्यक्त अव्यक्त और ज्ञ इन तीन नामों करके कहेजाते हैं इन तीनोंमें से किसी की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण करके होती है किसी की अनुमान प्रमाण करके और किसी की शब्द प्रमाण करके होती है इसवास्ते तीनहीं प्रमाण कहेजाते हैं ॥ ४ ॥ आगे प्रमाणों के लक्षणको कहते हैं ॥

मूलम् ॥

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टंत्रिविधमनुमानमाख्या तम् ॥ तल्लिंगलिंगिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनन्तु ५ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रतिविषयाध्यवसायः दृष्टम् त्रिविधम् अनुमानम् आख्यातम् तत् लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम् आप्तश्रुतिः आप्तवचनम् तु ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रतिविषयाध्यवसायः	= हरएकविषयकानिश्चय इन्द्रियद्वारा	आख्यातम्	= कहागयाहै
		तत्	= सोअनुमान
दृष्टम्	= प्रत्यक्ष प्रमाण है	लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम्	= लिङ्गलिङ्गिपूर्वक है
		तु	= और
अनुमानम्	= अनुमान प्रमाण	आप्तश्रुतिः	= आप्तवक्ता का वाक्य
त्रिविधम्	= तीन प्रकारका	आप्तवचनम्	= यथार्थ वचन है

भावार्थ ॥

श्रोत्रादि इन्द्रियों द्वारा जो शब्दादि विषयों का ज्ञान होताहै इसी का नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है और अनुमान प्रमाण तीनप्रकार

का है शेषवत् पूर्ववत् सामान्यतो दृष्टानुमान पूर्वही जिसका का-
रण होवै उसकानाम पूर्ववत् है जैसे मेघों की उन्नति याने अ-
धिक घटा वृष्टिको सिद्धकरता है ॥ अद्यवृष्टिर्भविष्यति मेघोन्नत
त्वात् ॥ आज वर्षा होगी मेघों की उन्नति होनेसे इस अनुमान
का नाम पूर्ववत् अनुमान है और समुद्र के जलके एक बूंदमें प्र-
थम लवण की सिद्धि करके फिर सारे समुद्र को लवणवाला अ-
नुमान करके सिद्ध करना इसका नाम शेषवत् अनुमान है और
एक देशसे चन्द्रमादि तारोंको दूसरे देश में प्राप्त हुये देखकर अ-
नुमान होता है कि चन्द्रमा आदिक तारे भी क्रियावाले हैं जैसे
देवदत्त क्रियावाला है और एक देशसे दूसरे देशको जाता है
तैसे चन्द्रमा तारे आदि भी एक देशसे दूसरे देशको प्राप्त होते हैं
और क्रियावाले हैं इसका नाम सामान्यतो दृष्टानुमान है ॥ कि-
ञ्चलिङ्गलिङ्गिपूर्वकम् ॥ अनुमान लिङ्गलिङ्गिपूर्वक है लिङ्गनाम
व्याप्यका है लिङ्गिनाम व्यापक का है अर्थात् व्याप्य व्यापक पू-
र्वकही अनुमान होता है ॥ यह अनुमान का सामान्य लक्षण है
कहीं तो लिंग करके लिंगिका अनुमान होता है और कहीं लिं-
गिकरके लिंगका अनुमान होता है प्रथम लिंग करके लिंगी के
अनुमान को दिखाते हैं जहांपर किसी पुरुषके हाथ में दंड देखा
गया वहांपर ऐसा अनुमान होता है कि ॥ अयंपुरुषः दण्डी ॥ क
स्मात् दण्डग्रहणात् यह पुरुष यती है याने संन्यासी है क्योंकि
इसने दण्डको ग्रहण किया है ऐसा अनुमान लिंगपूर्वक अनु-
मान है अब लिंगीपूर्वक अनुमान को दिखातेहैं जहां लिंगी क-
रके लिंगको अनुमान करतेहैं उसका नाम लिंगीपूर्वक अनुमान
है जैसे किसी नदीके किनारे पर दण्ड धरेहुये को देखकर और

समीपमेंयती को बैठा देखकर यह अनुमान करके सिद्ध होता है कि यह दण्ड इस यतीका है यह अनुमान लिंगिपूर्वक है क्योंकि लिंगी यतीको देखकर लिंगरूपी दण्ड का अनुमान होता है॥ आप्तश्रुतिआप्तवचनम्॥ आप्तवक्ता का जो वाक्य है उसीका नाम आप्तवचन है सो आप्त याने यथार्थवक्ता आचार्य्य ब्रह्मा आदिक हैं तिनका जो वेदरूपी वचन है उसीका नाम आप्तवचन है॥ ५॥ अब जिस प्रमाण करके जिसकी सिद्धि होती है सो दिखाते हैं॥

मूलम्॥

सामान्यस्तुदृष्टादतीन्द्रियाणांप्रसिद्धिरनुमानात्॥ तस्मादपिचासिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम्॥ ६॥

पदच्छेदः॥

सामान्यतः तु दृष्टात् अतीन्द्रियाणाम् प्रसिद्धिः अनुमानात् तस्मात् अपि च असिद्धम् परोक्षम् आप्तागमात् सिद्धम्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सामान्यतः =	इन्द्रियगोचरपदार्थ की सिद्धि	अतीन्द्रियाणाम् =	इन्द्रियातीतपदार्थकी
दृष्टात् =	प्रत्यक्षप्रमाणसे	प्रसिद्धिः =	सिद्धि
तु =	और	अनुमानात् =	अनुमान प्रमाण से

भवति = होती है	असिद्धम् = सिद्ध नहीं है
च = और	तत् = वह
यत् = जो	आप्तागमात् = शब्दप्रमाणसे
परोक्षम् = परोक्षपदार्थ	सिद्धम् = सिद्धहै ॥
तस्मात् = प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से	

भावार्थ ॥

जो अतीन्द्रिय है अर्थात् इन्द्रियोंका का विषय नहींहै उसकी सिद्धि सामान्यतोदृष्टानुमान प्रमाण से होती है प्रधान और पुरुष दोनों अतीन्द्रिय हैं इसवास्ते इनकी सिद्धि सामान्यतोदृष्टानुमान प्रमाण से होती है जिसके ये त्रिगुणात्मक महदादि कार्य हैं वही प्रधान है वह तो अचेतन है परंतु चेतन की तरह प्रतीत होती है और प्रधान से भिन्न अधिष्ठाता पुरुष है वह चेतन स्वरूप है अव्यक्त जो महदादिक हैं वे प्रत्यक्षप्रमाण करके सिद्ध हैं और जो प्रत्यक्षप्रमाण करके सिद्ध नहीं हैं और परोक्ष भी हैं वे आगम याने शब्दप्रमाणकरके सिद्ध हैं ॥ यथेन्द्रोदेवराजःउत्तराः कुरवः स्वर्गेऽप्सरसः ॥ जैसे इन्द्र देवतों का राजा है और उत्तर में कुरू हैं स्वर्ग में अप्सरा हैं इन वाक्य करके इन्द्रादिकों की सिद्धिहोती है कोई ऐसा कहताहै कि जिसपदार्थ की प्रतीति नहीं होती है वह नहीं है जैसे पुरुषका दूसरा शिर और तीसरी भुजा नहीं है इसवास्ते तिसकी प्रतीति भी नहीं होती है तैसेही प्रधान और पुरुष की प्रतीति नहीं है इस वास्ते वे भी नहीं हैं. सो ऐसा नियम नहीं है कि जिसकी प्रतीति नहीं होती है वह नहीं है किंतु

विद्यमान पदार्थों की भी प्रतीति आठ हेतुओं से नहीं होती है उसको दिखाते हैं ॥ ६ ॥

मूलम् ॥

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोनवस्थानात् ॥ सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ॥

अतिदूरात् सामीप्यात् इन्द्रियघातात् मनोऽनवस्थानात् सौक्ष्म्यात् व्यवधानात् अभिभवात् समानाभिहारात् च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अतिदूरात् =	अतिदूरहोनेके कारण	सौक्ष्म्यात् =	अतिसूक्ष्म होनेके कारण
सामीप्यात् =	अतिसमीपहोने के कारण	व्यवधानात् =	बीचमेंव्यवधानहोने के कारण
इन्द्रियघातात् =	किसीइन्द्रियके नाश होने के कारण	अभिभवात् =	दूसरेकरके अभिभव होने याने दबजाने के कारण
मनोऽनवस्थानात् =	मनकीअनवस्थिति के कारण	च =	और

समाना-भिहारात् = { इन्द्रियामिलजाने के कारण | + पदार्थस्य = वस्तुकी +अनुपलब्धिः = अप्रतीति + भवात – हो सक्ती है ॥ }

भावार्थ ॥

इस लोक में विद्यमान पदार्थों की भी अति दूर स्थिति होने के कारण अनुपलब्धि याने अप्रतीति देखी जाती है जैसे देशांतरमें याने दूरदेशमें स्थित चैत्र मित्रादिकों की अप्रतीति देखते हैं और अतिसमीप होने से भी पदार्थ की प्रतीति नहीं होतीहै जैसे चक्षुमें अञ्ज़न की प्रतीति नहीं होती है क्योंकि अति समीप होने से नेत्र उसको नहीं देखसक्ते हैं और इन्द्रिय के अभिघात याने नाश होनेसे भी वस्तु की प्रतीति नहीं होती है जैसे अन्धेको रूपकी प्रतीति नहीं होती है क्योंकि उसका चक्षु इन्द्रिय नष्ट होगया है इसी प्रकार जिसका श्रोत्र इन्द्रिय नष्ट होगया है उसको शब्द की प्रतीति नहीं होती है घ्राणेन्द्रिय के नाश से गंधका ज्ञान नहीं होता है रसनाके नाशसे रसका ज्ञान और त्वगिन्द्रिय के नाशसे स्पर्शका ज्ञान नहीं होता है और मनकी अनवस्थिति से याने चंचलता से किसी वस्तुका ज्ञान नहीं होताहै जैसे एक पुरुष कथन करता है और दूसरा मनके न स्थिर होनेसे कहता है कि मैंने नहीं सुना फिर कथन करिये और अति सूक्ष्म पदार्थ की भी उपलब्धि नहीं होती है जैसे आकाश में अति सूक्ष्म धूलीकी अथवा परमाणुवों की प्रतीति नहीं होती है क्योंकि वे अतिसूक्ष्म हैं और बीच में व्यवधान होने से भी पदार्थ की प्रतीति नहीं होती है जैसे दीवारकी दूसरी तरफ रखीहुई वस्तु नहीं

दिखाती है क्योंकि बीचमें दीवारका व्यवधान याने पर्दा है और अभिभव से भी वस्तु की प्रतीति नहीं होती है जैसे सूर्य के तेज करके अभिभूत याने दबाये हुए ग्रह नक्षत्रादिक नहीं दिखाते हैं और ॥ समानाभिहाराद्यथामुद्गराशौ ॥ जैसे उरद के अंबार में थोड़ेसे फेंकेहुए उरदों की प्रतीति नहीं होती है क्योंकि वे मिलगये हैं पूर्वोक्त आठ हेतुवों से विद्यमान पदार्थ का भी लोकमें ज्ञान नहीं होसक्ता है ७ जब कि प्रधान और पुरुष अत्यन्त सूक्ष्म होनें के कारण इन्द्रिय गोचर नहीं हैं तब उनकी अस्ति किस हेतु से स्वीकार करते हो और इनकी अप्रतीति किसहेतु से होती है अब जिस हेतु से इनकी प्रतीति नहीं होती है सो दिखाते हैं ॥

मूलम् ॥

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धिः। महदादि तच्चकार्यं प्रकृतिविरूपं स्वरूपं च ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ॥

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः न अभावात् कार्यतः तदुपलब्धिः महदादि तत् च कार्यम् प्रकृतिविरूपम् स्वरूपम् च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सौक्ष्म्यात्	= सूक्ष्महोने के कारण	तदनुपलब्धिः	= प्रधानकी अप्रतीतिहै

नाभावात् =	अभावहोने के कारण अप्रतीति नहीं है	तत् =	वह
		महदादि =	बुद्धिआदि
		+प्रधानस्य =	प्रधानके
		कार्यम् =	कार्य है
कार्य्यतः =	कार्य से	च =	और
तदुपलब्धिः =	प्रधानकारणकी उपलब्धि होती है	प्रकृतिविरूपम् =	प्रधानके असदृशहै
		च =	और
		स्वरूपम् =	सदृशभीहै॥

भावार्थ॥

सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिः॥ वह प्रधान अतिसूक्ष्म है इस वास्ते उसकी प्रतीति नहीं होती है और जैसे आकाश में सूक्ष्म ऊष्मताकी और जलादिकों के परमाणुआदिकों की उपलब्धि नहीं होती है वैसेही अतिसूक्ष्म होने से प्रधान की भी उपलब्धि नहीं होती है कुछ प्रधान के अभाव होने से उसकी अनुपलब्धि नहीं कार्य से उसके कारण की उपलब्धि होती है याने कार्य को देखकर कारण का अनुमान होता है प्रधान कारण है उसके कार्य महदादि हैं बुद्धि अहंकार पंच तन्मात्रा एकादश इन्द्रिय पंचमहाभूत ये सब साक्षात् और परंपरा करके प्रधानकेही कार्य हैं॥ तच्चकार्यंप्रकृतिविरूपंस्वरूपंच॥ बुद्धिआदिक जो प्रधान के कार्य हैं सो प्रकृति के विरूपहैं याने असदृशरूपवालेहैं और समानरूपवाले भी हैं जैसे लोक में पिताकापुत्र किसी अंश में तुल्य होताहै और किसी अंशमें अतुल्य होता है जिस हेतु करके महदा

दि कार्य प्रधान के तुल्यहैं और जिस हेतु करके अतुल्य हैं तिस को आगे कहेंगे शून्यवादी कहता है कि असत् से सत् जगत् की उत्पति होती है और नैयायिक कहता है कि सद्रूप परमाणुवोंसे असत् कार्यरूप जगत् की उत्पत्ति होती है वेदान्ती कहता है कि एक सद्रूप ब्रह्मका विवर्तरूप जगत् है सो इन तीनों का पक्ष ठीक नहीं है प्रथम तो असत् शून्य से सत् जगत् की उत्पत्ति नहीं होसक्ती है क्योंकि यदि शून्य से उत्पत्ति मानोगे तब शून्य नाम अभावका है सो अभाव सर्वत्र विद्यमान है तब विना उपादान कारण मृत्तिका आदिकों के सर्वत्र घटादिरूप कार्य की उत्पत्ति होनी चाहिये सो तो नहीं होती है इस वास्ते शून्य इस जगत् का कारण नहीं होसक्ता है इसवास्ते शून्यवादीका कथन मिथ्या है और नैयायिक जो सद्रूप परमाणुवों से असत्कार्यरूप जगत् की उत्पत्ति मानता है तिसका भी कथन ठीक नहीं क्यों कि कार्य कारण का अभेद होताहै सो नहीं होगा क्योंकि सत असत् का अभेद नहीं बनता है वेदांती ब्रह्मका विवर्त जगत् को मानता है इसका भी मत ठीक नहीं है क्योंकि ॥ सतः सञ्जायते ॥ सत् से सत्की उत्पत्ति होतीहै इस श्रुतिके साथ विरोधआवेगा और अप्रपंचरूप ब्रह्मकी प्रपंचरूप जगत् करके जो प्रतीति है वह भी भ्रमरूपही होगी और ऐसा होनेसे कोई भी व्यवहार नहीं सिद्ध होना चाहिये परंतु होताहै इसवास्ते जगत् को विवर्त्तरूपता भी बनती है इसलिये तीनों मत त्यागने योग्यहैं और बौद्धादिक भी असत्कार्यवादी हैं सो उनका मत भी त्यागने योग्यहै क्योंकि असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं होतीहै और सत्से असत् की उत्पत्ति नहीं होतीहै ॥ इसीवास्ते सांख्यदर्शन में

सत्कार्यवादही कहा है और पूर्वोक्त मतों में प्रधान की सिद्धि भी नहीं होती है = अब प्रधान की सिद्धिकेवास्ते सत्कार्यवाद को दिखाते हैं॥

मूलम्॥

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्॥ शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्चसत्कार्यम्॥ ६॥

पदच्छेदः॥

असदकरणात् उपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावात् च सत्कार्यम्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
असदकरणात्	= सत्कारण होने से	शक्तस्य	= शक्तिविशिष्टको
उपादानग्रहणात्	= उपादनके ग्रहणकरनेसे	शक्यकरणात्	= कार्य उत्पन्न करने से
		च	= और
च	= और	कारणभावात्	= कारणके विद्यमानहोनेसे
सर्वसम्भवाभावात्	= सवकासवमेंसंभव न होनेसे	सत्कार्यम्	= कार्य सत् है

भावार्थ॥

असत् से सत्कार्य्य नहीं वनताहै क्योंकि असत्कार्य्य सत्कारण

से किसीप्रकार भी नहीं होसक्ता है इस वास्ते कार्य्य सत है और यह कार्य्य कारण के व्यापार से पूर्व्वभी सतही जानपड़ता है जैसे दण्डके व्यापारसे पूर्व्व भी घटत्वका ज्ञान कुलाल को रहता है यदि ज्ञान न होवै तो किसीप्रकारसे भी उसकी उत्पत्ति के व्यापार में प्रवृत्त न होवै और जो कोई कहता है कि वीजके अंकुर की उत्पत्ति में ध्वंसही कारण है क्योंकि जब पृथिवी से वीज में अंकुर निकलता है तब प्रथम पृथिवी में विवर करके याने छिद्र करके और वीजको ध्वंस याने नाश करके या वीजको विदारण करके निकलता है इससे विना नहीं निकलता है इस वास्ते ध्वंसही कारण है कार्य्यकी उत्पत्ति में सो ऐसा उसका कथन ठीक नहीं है क्योंकि ध्वंसनाम अभावका है सो अभावकारण भावका कदापि नहीं होसक्ताहै ॥ यदि अभाव कारण होवे तव विना मृत्तिकापिण्डके भी घटादिकों की उत्पत्ति होनी चाहिये क्योंकि अभाव तो सर्व्वत्र विद्यमान है फिर सामग्री की क्या जरूरत है और घट के ध्वंस होने परभी तिस घटके ध्वंस से फिर घट उत्पन्न होनाचाहिये पर ऐसा तो नहीं होता है इस वास्ते अभाव कारण नहीं होसक्ताहै वीजमें जो सूक्ष्म अवयवहैं सोई अंकुररूपी कार्य्यकी उत्पत्तिमें कारणहैं और पृथिवी का भेदनादि व्यापार नहीं ॥ क्योंकि मुख्य कारण कार्य्यका उपादान होताहै सो उपादान कारण में कार्य्य की उत्पत्ति से पहले सूक्ष्मरूप होकर रहता है व्यापाररूपी निमित्तकारण से फिर प्राडुर्भाव को प्राप्त होता है और नाशके व्यापारसे तिरोभाव को प्राप्त होताहै कार्य्य सदैव सत् है और कारण भी सदैव सत् है जैसे नील रूपमें श्वेतरूपका अभाव है याने असत है और किसी उपायकरके भी नीलरूपमें श्वेतरूप प्रत्यक्ष नहीं

होताहै तैसेही यदि कार्य्य को असत् मानोगे तो घट पटादिकों का प्रत्यक्ष कदापि नहीं होगा और किसी की असत्से उत्पत्ति भी नहीं होसक्ती है इसी पर कहा है ॥ असदकरणात् ॥ असत् से कोई कार्य नहीं होसक्ता है और न कोई कर सक्ताहै ॥ और लोकमें भी देखते हैं कि असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं होती है जैसे वालू में तेल की उत्पत्ति नहीं हो सक्ती है क्योंकि वालू में तेलका अभाव है और तिलों से तेल की उत्पत्ति हो सक्ती है क्योंकि तिलों में तेल उत्पत्ति से पूर्व्व भी विद्यमान है इसी से साबित होता है कि उत्पत्ति से पूर्व्व भी कार्य्य सत् है और जैसे मृत्पिण्डमें उत्पत्तिसे पूर्व्व घट सत् है तैसे प्रधान में व्यक्तादि रूप कार्य्य भी सत्यहैं ॥ उपादानग्रहणात् ॥ उपादान के ग्रहण करनेसे भी कार्य सत् है जैसे इस लोकमें दधिका अर्थी दुग्धरूप उपादान को ग्रहण करता है और घटका अर्थी मृत्तिका रूपी उपादान को ग्रहण करताहै अन्य वस्तुका ग्रहण नहीं करता है इससे भी साबित होताहै कि कार्य्य उत्पत्तिसे पूर्व्व भी सत्ही है और कार्य्य का सम्बन्ध भी सबकारणों में नहीं है इस वास्ते एकही कार्य्य सब कारणोंसे उत्पन्न नहीं होता है किन्तु जिसमें उसका सम्बन्ध है उसी से उत्पन्न होता है अन्य से नहीं क्योंकि बिना सम्बन्ध के कार्य्य की उत्पत्ति नहीं होती है जैसे स्वर्णका भूषण स्वर्णसेही उत्पन्न होता है रजत से उत्पन्न नहीं होसक्ताहै इसी पर मूलमें कहाहै कि ॥ शक्तस्यशक्यकरणात् ॥ शक्तिविशिष्ट का नाम शक्त है और शक्य नाम कार्य्यका है अर्थात् जिसमें कार्य्य के उत्पन्न करने की शक्ति है उसी से कार्य्य उत्पन्न हो सक्ताहै उसी का नाम कारण भी है उसी में कार्य्योत्पादक शक्ति का सम्बन्ध भी रहता है जैसे मृत्पिण्ड में घटोत्पादक

शक्ति का सम्बन्ध है तिसी से कुलालचक्र चीवरादि सामग्री से घटको उत्पन्न करसक्ताहै वालू से नहीं उत्पन्न करसक्ताहै क्योंकि उसमें घटोत्पादक शक्ति नहीं है इस से भी सिद्ध होता है कि कार्य्य सत् है ॥ कारणभावाच्चसत्कार्य्यम् ॥ और कार्य्य को कारणरूप होने से अथवा कार्य्य कारण का अभेद होने सेभी कार्य्य सत् है जैसे श्वेत तन्तुओं से श्वेतही पट उत्पन्न होता है यदि तन्तुओं से पटको भिन्न मानोगे और असत् मानोगे तव पट में श्वेतता भी नहीं होगी और सत् असत् का सम्बन्ध भी नहीं वनता है इस वास्ते कार्य्य सत् है और कार्य्य कारण का अभेद भी है क्योंकि जो जिसका धर्म्म नहीं होता है तिसका तिसके साथ अभेद सम्बन्ध भी नहीं होता है जैसे गौ से अश्व भिन्न है अश्व गौ का धर्म्म भी नहीं है तैसे पट नहीं है पट तन्तुओं से अभिन्न है इस वास्ते उनका धर्म्म याने कार्य्य है और जैसे सद्रूप यवों से यवही उत्पन्न होते हैं धान से धानही उत्पन्न होता है कोद्रवों से यव धान उत्पन्न नहीं होते हैं इस युक्ति सेभी कार्य्य सतही सिद्ध होता है और भगवान् ने भी गीता में कहा है ॥ नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥ असत् का सद्भाव कदापि नहीं होताहै ॥ और सत्का असत् भावभी कदापि नहीं होता है इससे भी सिद्ध होता है कि कार्य्य सतही है ॥ पूर्वोक्त पांच हेतुओं से यह वार्त्ता सिद्धहुई कि जो प्रधान में महदादि कार्य्य हैं वे सतहैं और उत्पत्तिसे पूर्व्व भी प्रधानमें विद्यमानहैं इसवास्ते सत्कार्यकी सत्कारण से उत्पत्ति होती है असत् से नहीं होती है ८ पूर्व्व जो कहा है कि महदादि कार्य्य प्रकृति के विरूप भी हैं और स्वरूप भी हैं उनको अब दिखाते हैं ॥

मूलम् ॥

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितंलिंगम् ॥ सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ॥

हेतुमत् अनित्यम् अव्यापि सक्रियम् अनेकम् आश्रितम् लिंगम् सावयवम् परतन्त्रम् व्यक्तम् विपरीतम् अव्यक्तम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
व्यक्तम्	= व्यक्त	लिङ्गम्	= लययुक्तहै
हेतुमत्	= हेतुवालाहै	सावयवम्	= सावयव है
अनित्यम्	= अनित्यहै	परतन्त्रम्	= परतन्त्रहै
अव्यापि	= अव्यापकहै	अव्यक्तम्	= अव्यक्तहै
सक्रियम्	= क्रियावालाहै	विपरीतम्	= व्यक्तसेविपरीतहै ॥
अनेकम्	= अनेकहै		
आश्रितम्	= आश्रितहै		

भावार्थ ॥

व्यक्त जो महदादि कार्यहै सो हेतुमत् याने हेतुवाला है जिसका कोई हेतु याने कारण होवै उसका नाम हेतुमत् है उपादान और हेतु तथा कारण और निमित्त ये पर्याय शब्दहैं सो व्यक्तका प्रधान हेतुहै इस वास्ते व्यक्तको हेतुमत् कहाहै सो व्यक्तसे लेकर महाभूतों पर्यंत ये सब हेतुवाले हैं॥ प्रधान कारण व्यक्तका है व्यक्तकारण अहंकारका है अहंकार कारण पञ्चतन्मात्रा और ए-

कादश इन्द्रियोंका है पंचतन्मात्रा कारण पंचमहाभूतोंका है आ
काशका कारण शब्द तन्मात्र है वायुका कारण स्पर्श तन्मात्रा
है रूप तन्मात्रा तेजका कारण है रस तन्मात्रा जलका कारण है
और गंध तन्मात्रा पृथिवीका कारणहै और जो पूर्व २ कार्यहैं और
उत्तर २ कारणहैं सो कार्य अपने कारणको साथ लियेहुये हैं क्यों-
कि जो कार्य होताहै सो विना अपने कारण के रहनहींसक्ता है
जैसे पटरूप कार्य विना अपने उपादान कारण सूतके नहीं रहस-
क्ताहै इस लिये अपने उपादान को लियेहुये ही पटआगे वस्त्रादि-
कोंके प्रति कारण होता है तैसे व्यक्त जो महत्तत्त्वहै सो भी अपने
प्रधान् कारण को लियेहुये ही अहंकारके प्रतिकारण है आगेअ-
हंकार और पंचतन्मात्रा को भी इसी प्रकार जानलेना ॥ व्यक्तम
नित्यम् ॥ जैसे मृत्पिण्ड से घट उत्पन्न होताहै और अनित्यहै तैसे
प्रधान से व्यक्तभी उत्पन्न होताहै और अनित्य है यद्यपि सम्पूर्ण
कार्य स्वभावसे तो नित्य है तथापि अवस्था करके अनित्य याने
नाशीहैं ॥ प्र० ॥ नाशक्या है? ॥ उ० ॥ कार्यका कारणमें लयहो-
जाना अथवा तिरोभाव होजानाही नाशहै और उत्पत्ति क्याहै?
कारणका रूपांतर होजानाही उत्पत्तिहै उसीका नाम प्रादुर्भाव भी
है और कार्य अव्यापिभी है याने सर्वगत नहींहै परिच्छिन्न और
प्रधान और पुरुष सर्वगतहैं इस वास्ते वे कार्य किसी के नहीं हैं
और कार्य रूप व्यक्त क्रिया सहितहै क्योंकि संसार कालमें त्रयो-
दश विधकरणों करके संयुक्त हुआ २ सूक्ष्म शरीर को आश्रयण
करके जन्ममरण क्रियाको करताहै इसी वास्ते उसको ॥ सक्रियं॥
याने क्रियाके सहित कहाहै ॥ अनेकं ॥ बुद्धि अहंकार पंचतन्मा-
त्रा एकादश इन्द्रिय पंचमहाभूत इस रीति से व्यक्त अनेकहैं ॥

आश्रितम् जैसे पञ्चमहाभूत पंचतन्मात्रा के आश्रितहैं ऐसेही पंचतन्मात्रा अहंकारके आश्रितहैं इसी तरह सबकार्य अपने २कारणके आश्रितहैं क्योंकि निराश्रय होकर कोईकार्य एक क्षणमात्र भी नहीं रहसक्ता है ॥ लिङ्गंव्यक्तम् ॥ व्यक्तजो कार्यहै सोलय करके युक्तहै सो दिखाते हैं लयकाल में याने प्रलयकाल में पंच महाभूत पंचतन्मात्रा में लय होजाते हैं और पंचतन्मात्रा और एकादश इन्द्रिय अहंकार में लय होजाते हैं अहंकार महत्तत्त्व में लय होजाताहै औरमहत्तत्त्व प्रधान में लय होजाताहै इस रीति से सब कार्य लय करके युक्त हैं ॥ सावयवम् ॥ और कार्य सावयवभी हैं शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये अवयवहैं ॥ परतंत्रम् ॥ और सब कार्य परतंत्रहैं जैसे प्रधानके परतंत्र बुद्धिहै बुद्धिके परतंत्र अहंकार है अहंकारके परतंत्र पञ्चतन्मात्रा और एकादश इन्द्रिय हैं और तन्मात्रा के परतन्त्र पञ्चमहाभूतहैं इसरीति से और भी यावत् जानलेना॥ विपरीतमव्यक्तम्॥ पूर्व जो व्यक्तके गुण कथनकियेगये हैं तिनसे अव्यक्त विपरीत गुणोंवाली है ॥ सो दिखाते हैं प्रधान से परे कुछ भी नहीं है इस वास्ते प्रधान नित्य है नित्य होनेसेही उसकी उत्पत्ति किसी से नहींहै इसी वास्ते उसको हेतुमत् कहाहै और प्रधान व्यापी है याने सर्वगतहै ॥ और सर्वगत होनेसे ही क्रियासे भी रहितहै ॥ व्यक्त कार्य होनेसेही अनेकहै और तीनों लोकों का कारण होनेसे प्रधान एकहै ॥ और व्यक्त कार्य होनेसे कारण के आश्रितहै और प्रधान अनाश्रितहै क्योंकि किसी का कार्य नहीं है और अव्यक्त अलिंगभी है क्योंकि सब का लय अपने २ कारण में होता है प्रधान का कोई भी कारण नहीं है उसका लय किसीमें नहीं होताहै इसवास्ते अलिंगहै अव्यक्त नि-

स्वयवभी है क्योंकि शब्द स्पर्श रूप रस गंध प्रधानमें नहीं हैं और अव्यक्त स्वतंत्रभी है क्योंकि साधनांतर की अपेक्षा से विनाही कार्य को उत्पन्न करती है १० व्यक्त अव्यक्त के वैधर्मों का निरूपण कर दिया अब उनके साधर्मों का निरूपण करते हैं ॥

मूलम् ॥

त्रिगुणमविवेकिविषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि॥व्यक्तंतथाप्रधानंतद्विपरीतस्तथाचपुमान् ११॥

पदच्छेदः ॥

त्रिगुणम् अविवेकि विषयः सामान्यम् अचेतनम् प्रसवधर्मि व्यक्तम् तथा प्रधानम् तद्विपरीतः तथा च पुमान् ॥

अन्वयः	पदार्थ
व्यक्तम्	= व्यक्तमहत्तत्वादि
त्रिगुणम्	= त्रिगुणात्मक है
अविवेकि	= विवेकहीनहै
विषयः	= विषय है
सामान्यम्	= साधारण है
अचेतनम्	= जड़ है
प्रसवधर्मि	= प्रसवधर्म्म वाली है
तथा	= वैसेही
प्रधानम्	= प्रधानभी है
तथाच	= और
तद्विपरीतः	= तिस से विलक्षण
पुमान्	= पुरुष है ॥

भावार्थ ॥

त्रिगुणंव्यक्तम् ॥ व्यक्त जो महत्तत्त्व है सो त्रिगुणात्मक है तीन गुण होवें जिसमें उसका नाम त्रिगुणात्मक है अर्थात् व्यक्त

तीनों गुणों वाली है ॥ अविवेकि ॥ गुणों से तिसका विवेक भी नहीं हो सक्ता है जैसे यह गौ है यह अश्व है इस प्रकार का विवेक यह व्यक्त है यह गुण है नहीं हो सक्ता है ॥ किन्तु जो गुण है वही व्यक्त है और जो व्यक्त है वही गुण है दोनोंकी अभेदप्रतीति होती है भेद करके प्रतीति नहीं होती है ॥ तथाविषयः ॥ व्यक्त विषयभी है सम्पूर्ण पुरुषोंका विषयभूत है अर्थात् सब पुरुषों का भोग्य है ॥ तथासामान्यम् ॥ सर्व्वपुरुषों में साधारण भीहै अर्थात् पुरुषों करके ग्रहण करने योग्यहै जैसे वेश्या नृत्यकारी के समय भ्रुवों के कटाक्ष से अनेकपुरुषों को अपना हाव भाव दिखाती है परन्तु उस की भ्रू एक होती हुई भी सबको मोहन करने में साधारण है तैसे व्यक्त एक होतीहुई साधारणभी है व्यक्त अचेतनहै सुख दुःख मोहादिकों को नहीं जानसक्ती है क्योंकि जड़ीभूत है ॥ तथा प्रसवधर्मिव्यक्तम् ॥ व्यक्त उत्पन्न करनेवाली धर्मवाली है अर्थात् उत्पत्ति करनेका जो धर्म है उस करके युक्त है बुद्धिसे अहंकार अहंकारसे पंचतन्मात्रा तथा एकादशइन्द्रिय और पंचतन्मात्रा से पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं इसी कारण प्रसवधर्मवाली है व्यक्त अव्यक्त के सामान्यरूपवाली है अर्थात् व्यक्त अव्यक्त दोनों सामान्यरूपवालीहैं जैसे व्यक्त है तैसेही प्रधान भी है ॥ जैसे व्यक्त त्रिगुणात्मक है तैसे अव्यक्तभी त्रिगुणात्मक है और ऐसा नियम भी है कि जो गुण कारण में होते हैं वही गुण कार्य मेंभी होते हैं जैसे कालेरंगके तंतुवों से कालेरंगकाही पटहोताहै ॥ तथा अविवेकिप्रधानम् ॥ जैसे अविवेकी व्यक्तहै तैसे प्रधानभी है अर्थात् जैसे व्यक्तका गुणोंसे भेद नहींहोसक्ता है तैसे प्रधानका भी गुणों से भेद नहीं होसक्ता है यह गुणहै और यह प्रधान है ऐसा विवे-

चन नहीं होसक्ता है जैसे व्यक्त विषय है तैसे प्रधानभी विषय है और जैसे व्यक्त सामान्य है सर्व्व पुरुषोंमें साधारणहै और जड़ है तैसे प्रधान भी सर्व्व पुरुषों में साधारण है और जड़है जैसे व्यक्तको सुख दुःखादिकों का ज्ञान नहीं होता है तैसे प्रधान को भी सुख दुःखादिकों का ज्ञान नहीं होताहै ॥ और जैसे अचेतन मृत्पिंडसे घटभी अचेतन उत्पन्न होताहै तैसेही अचेतन प्रधानसे अचेतनही व्यक्तभी उत्पन्न होती है व्यक्त अव्यक्त के सामान्य धर्मों अर्थात् व्यक्त अव्यक्त के साधारण धर्मोंका निरूपण करदिया अब तिन दोनों से विपरीत धर्मवाले पुरुषका निरूपण करते हैं ॥ तद्विपरीतस्तथापुमान् ॥ तद्विपरीतः ताभ्यां व्यक्ताव्यक्ताभ्यां विपरीतः पुमान् ॥ व्यक्त और अव्यक्त इन दोनों से विपरीत याने विलक्षण धर्मवाला पुरुष है ॥ सो दिखाते हैं ॥ व्यक्त और अव्यक्त दोनों तीन गुणवाले हैं पुरुष गुणोंसे रहित है व्यक्त अव्यक्त दोनों अविवेकी हैं पुरुष विवेकी है व्यक्त अव्यक्त दोनों विषयहैं पुरुष अविषयहै व्यक्त अव्यक्त सामान्यहैं और सर्व में साधारणहैं पुरुष असामान्य है और असाधारण है व्यक्त अव्यक्त दोनों अचेतन हैं पुरुष तिनसे विपरीत याने चेतन है जो ज्ञानशक्ति से रहित हो वह जड़ होताहै और जो ज्ञानशक्तिवालाहो वह चेतन होता है चेतनही सुख दुःख मोहादिकों को जानता है जड़ नहीं जानताहै व्यक्त अव्यक्त प्रसवधर्मी हैं पुरुष अप्रसवधर्मी है क्योंकि पुरुष से कुछ उत्पन्न नहीं होताहै इन्हींकारणों करके पुरुष तिनसे विलक्षण है और जैसे पूर्वकारिका में कथन कियाहै कि प्रधान अहेतुमत् है याने कारण रहितहै तैसे पुरुष भी अहेतुमत्है याने कारणरहितहै व्यक्त हेतुमत् है और अनित्यहै तिससे विपरीत अव्यक्तहै ॥

अर्थात् अव्यक्त अहेतुमत् है और नित्यहै ॥ तैसे पुरुषभी अहेतुमत् और नित्यहै और व्यापक होने से क्रिया रहित है व्यक्त अनेक है अव्यक्त एकहै तैसे पुरुषभी है व्यक्त परके आश्रितहै अव्यक्त अनाश्रितहै तैसे पुरुषभी अनाश्रितहै व्यक्त लय करके युक्त है अव्यक्त लयसे रहितहै तैसे पुरुषभी लयसे रहितहै अर्थात् व्यक्त अपने कारण अव्यक्तमें लयहोता है पर प्रधान और पुरुष ये दोनों कारण रहितहैं इनका लय नहीं होताहै इसी वास्ते दोनों नित्यहैं व्यक्त सावयवहै क्योंकि उसके शब्दादिक अवयवहैं परन्तु अव्यक्त और पुरुष दोनों निरवयव हैं व्यक्त परतन्त्रहै और अव्यक्त स्वतन्त्र है वैसेही पुरुषभी स्वतंत्रहै इस रीतिसे पूर्व कारिका में अव्यक्त और पुरुषके साधर्मोंका निरूपण कियाहै और व्यक्त अव्यक्तकी साधर्मता और पुरुषकी वैधर्मता इस कारिका में कथन कियाहै और जो कहाहै कि ॥ त्रिगुणमविवेकी ॥ तीनों गुण विवेक हीन अव्यक्त है सो वह गुण कौनहैं तिन गुणोंके स्वरूप का निरूपण आगेकी कारिका में करेंगे ॥ ११ ॥

मूलम् ॥

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाःप्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः ॥ अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः १२ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयः च गुणाः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
गुणाः	= सत्त्वरजतम तीनों गुण	अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयः	= एकदूसरेको दबाकररहनेवालेहैंएक दूसरेके आश्रय हैं एक दूसरेको उत्पन्नकरनेवालेहैंएकदूसरेसेमिलकर रहनेवाले हैं और एक दूसरेकेसाथवर्तनेवालेहैं ॥
प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः	= प्रीति अप्रीतिऔर मोह रूप ही हैं		
प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः	= प्रकाशकरनेमेंप्रवृत्तिकरनेमें औरआलस्यकरनेमें समर्थहैं		
च	= और		

भावार्थ ॥

सत्त्व रज तम ये तीनोंगुण प्रीतिरूप अप्रीतिरूप और विषाद रूपहैं तीनोंमें से प्रीतिरूप सत्त्वगुण है ॥ प्रीतिनाम सुखकाहै सो सुखरूपही सत्त्वगुण है और अप्रीति नाम दुःखका है सो दुःखरूप रजोगुण है विषादनाम मोहका है सो मोहरूप तमोगुण है प्रीति शब्द उपलक्षण करके आर्जव लज्जा श्रद्धा क्षमा दया ज्ञानादिक हैं सोई सतोगुण के धर्महैं अप्रीति शब्द उपलक्षण करके द्वेष द्रोह मत्सरता निन्दादिकहैं सोई रजोगुणके धर्म हैं और विषाद

शब्द उपलक्षण करके कौटिल्यता कृपणता और अज्ञानता आदि-
कहैं सोई तमोगुणके धर्महैं सत्त्व रज तम तीनों गुणोंकी साम्या-
वस्थाका नामही प्रकृति है और सत्त्वादिक गुण द्रव्यहैं॥ नैयायि-
कने जो इनको विशेष गुण मानाहै सो उसका मानना ठीक नहींहै
क्योंकि ये संयोगवाले हैं और लघुत्व गुरुत्वादिक धर्मवालेभी
हैं और गुणमें गुण नहीं रहते हैं और इनमें संयोग वियोगादिक
गुण रहते हैं इसी से ये द्रव्यहैं और पुरुषरूप पशुके बांधनेवाली
त्रिगुणात्मक महदादिरूप रज्जुकी रचना ये गुणही करते हैं इसी
वास्तेये बन्धनके हेतुहैं॥ तथा प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः॥ अर्थ शब्द
का अर्थ समर्थ है॥ अर्थात् प्रकाश करने में समर्थ सत्त्वगुण है और
प्रवृत्ति कराने में समर्थ रजोगुण है और स्थिति याने आलस्य क-
राने में समर्थ तमोगुण है॥ तथा अन्योन्याभिभवाश्रयजननमि-
थुनवृत्तयश्च॥ अन्योन्याभिभवा॥ परस्पर एक दूसरे को तिर-
स्कार करते हैं प्रीति अप्रीति आदिक धर्म्मों करके एक दूसरे को
दवा लेतेहैं जब सत्त्वगुण उत्कट होता है याने अधिक होता है तब
रज और तम को दवा करके अपने गुण प्रीति प्रकाशादिक सहित
स्थित होताहै और जिसकालमें पुरुष में रजोगुण अधिक होताहै
तब सत्त्व और तमोगुणको दबाकर अपने प्रवृत्ति अप्रवृत्ति आदिक
धर्म्मों करके युक्त स्थित होता है और जब तमोगुण अधिक होता
है तब वह सत्त्व और रज को विषादादिक धर्म्मों से दवा कर
स्थित होता है॥ तथाऽन्योऽन्याश्रयाश्च॥ परस्पर एक दूसरे को
आश्रयण करके ही रहते हैं॥ अन्योन्यजननाः॥ जैसे मृत्पिण्ड
घट को उत्पन्न करता है तैसे गुण भी एक दूसरे को उत्पन्न करते
हैं याने जब एक गुण लय होजाताहै तब दूसरा उदय होता है वा-

स्तव में तीनों गुण सदैवही बने रहते हैं ॥ अन्योन्यमिथुनाश्च॥ जैसे स्त्री पुरुष परस्पर मिले रहते हैं तैसे गुण भी परस्पर मिले रहते हैं ॥ रजसोमिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनंरजः ॥ उभयोः सत्त्व रजसोर्म्मिथुनन्तमउच्यते ॥ रजोगुण का सतोगुण के साथ मिथुन याने मेल रहता है और सतोगुण का मेल रजोगुण के साथ रहता है और सतो रजोगुणों का मिथुन तमोगुण के साथ रहता है अर्थात् एक दूसरे के सहायक हैं ॥ तथाऽन्योऽन्यवृत्तयश्च ॥ एक दूसरे में वर्त्तते हैं जैसे सुन्दर रूप शील और स्वभाववाली स्त्री अपने पति को सर्व्वसुखों का हेतु है पर वही सपत्नी को दुःखका हेतु है और रागी पुरुषों को मोहका कारण है जब राजा सत्त्वगुण करके युक्त हुआ २ प्रजाका पालन करता है तब वही दुष्टों का निग्रह करता है और जब श्रेष्ठपुरुषों को सुख उत्पन्न करता है तब दुष्टों को दुःख उत्पन्न करता है इसी प्रकार सत्त्वगुण अपने काल में भी रज और तम की वृत्ति को उत्पन्न करता है और रजोगुण अपने काल में भी सत्त्व और तमकी वृत्ति को उत्पन्न करता है तैसेही तमोगुण भी अपने आवरणरूप स्वरूपद्वारा सत्त्व और रजकी वृत्ति को उत्पन्न करता है जैसे मेघ आकाश को आच्छादन करके जगत् को सतोगुण द्वारा सुख उत्पन्न करता है रजोगुणद्वारा वर्षा करके किसानों को हरजोतने का उद्यम उत्पन्न कराताहै और तमोगुण द्वारा वियोगी पुरुषोंको मोह उत्पन्न करता है इसप्रकार गुण परस्पर एकदूसरेकी वृत्तिको उत्पन्न करतेहैं ॥१२॥

मूलम् ॥

सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च र-

जः॥ गुरुवरणकमेवतमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥१३॥

पदच्छेदः॥

सत्त्वम् लघु प्रकाशकम् इष्टम् उपष्टम्भकम् चलम् च रजः गुरुवरणकम् एव तमः प्रदीपवत् च अर्थतः वृत्तिः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सत्त्वम्	= सत्त्वगुण	गुरु	= भारी है
लघु	= हलका है	वरणकम्	= आच्छादन स्वभाव वाला है
प्रकाशकम्	= प्रकाशक है	+परन्तु	= परन्तु
च	= और	दीपवत्	= दीपककीतरह
रजः	= रजोगुण	+तेगुणाः मिलित्वा	= वेगुणमिल कर के
उपष्टंभकम्	= प्रेरक	अर्थतः	= काम के सिद्ध करने में
चलम्	= चञ्चलस्वभाववाला	वृत्तिः	= तत्पर हैं॥
इष्टम्	= मानागया है		
च	= और		
तमः	= तमोगुण		

भावार्थ॥

जब सत्त्वगुण अधिक होता है तब शरीरके अङ्ग सब हलके हो जाते हैं और बुद्धि में प्रकाश उत्पन्न होताहै और इन्द्रियां सब प्रसन्न होजाती हैं औ रजो गुण उपष्टम्भकहै याने क्रिया करके युक्त

है उपष्टम्भक का अर्थ प्रेरक भी है क्योंकि सत्त्व और तम स्वयम् तो क्रिया से रहित हैं परन्तु रजोगुण उनको क्रिया करने में प्रेरणा करता है जब रजोगुण अधिक होता है तब पुरुष क्रिया को करता है तमोगुण जब अधिक होता है तब शरीर के अङ्ग सब भारी हो जाते हैं और इन्द्रियां आच्छादित होजाती हैं अर्थात् उस काल में आलस्य से युक्त हो कर अपने कार्य्य करने में असमर्थ हो जाती हैं ॥ शङ्का ॥ जब कि सत्त्वगुण का स्वभाव प्रीति है और रजोगुण का स्वभाव अप्रीति है और तमोगुण का स्वभाव आवरणात्मक है तब कोई भी वृत्ति उत्पन्न नहीं होनी चाहिये क्योंकि तीनों गुण परस्पर विरोधी हैं जैसे सुन्द उपसुन्द दोनों राक्षस परस्पर विरोधी होकर नष्ट होगये हैं तैसे गुण भी तीनों परस्पर विरोधी होने के कारण नाश को प्राप्त होजावेंगे ॥ उत्तर ॥ दीपक के तुल्य अर्थके सिद्ध करने में तीनों गुण प्रवृत्त होते हैं जैसे तेल अग्नि वत्ती ये तीनों परस्पर विरोधी तो हैं परन्तु इनके संयोगसे जैसे दीपक प्रकाशको उत्पन्न करता है तैसेही सत्त्व रज तम भी परस्पर विरुद्धभी हैं तौभी आपस में मिलकर अर्थको सिद्ध करते हैं ॥ १३ ॥

मूलम् ॥

अविवेक्यादिः सिद्धस्त्रैगुण्यात्तद्विपर्य्ययाभावात् ॥ कारणात्मकगुणत्वात् कार्य्यस्याऽव्यक्तमपि सिद्धम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ॥

अविवेक्यादिः सिद्धः त्रैगुण्यात् तद्विपर्य्ययाभा-

वात् कारणात्मकगुणत्वात् कार्य्यस्य अव्यक्तम् अपि सिद्धम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
कार्य्यस्य	= कार्यमहदादिकको	च	= और
त्रैगुण्यात्	= त्रिगुणात्मक होने से	कारणात्मकगुणत्वात्	= कारणकेगुणवालाहोने से याने जोगुण कारणमेंहोते हैं वही कार्य मेंहोतेहैं इस कारण से
अविवेक्यादिः	= अविवेक्यादिगुण		
+ तस्मिन्	= उनमें		
सिद्धः	= सिद्धहैं	अव्यक्तम्	= अव्यक्त
		अपि	= भी
तद्विपर्य्ययाभावात्	= तिनअविवेकआदिकों के विपरीत के अभाव होनेके कारण	+अविवेक्यादिगुणवान्	= अविवेक्यादिगुणवाला
		सिद्धम्	= सिद्ध है

भावार्थ ॥

जो अविवेकादि गुण हैं वे महत्तत्त्वादिकोंमें उनको त्रिगुणात्मक होने से प्रत्यक्ष प्रमाण करके सिद्ध हैं परन्तु अव्यक्त जो प्रधान है वह तो प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं है उसमें कैसे अविवेक आदि गुण सिद्ध होसक्ते हैं इस शङ्काके निवारणार्थ कहते हैं कि "तद्विपर्ययाभावात्" तद्विपर्ययस्तस्याभावस्तद्विपर्ययाभा-

वस्तस्मात् तद्विपर्ययाभावात्सिद्धमव्यक्तम् ॥ तस्याविवेकित्वस्य विपर्ययोयत्र ॥ अविवेकादिकों का विपर्यय होवै जिसमें उसका नाम तद्विपर्यय है सो अविवेकादिकों का विपर्यय याने अविवेकादिकों का न होना पुरुषमें है इस लिये त्रैगुणता का भी अभाव है क्योंकि जहां अविवेकादिकों का अभाव हैं तहां त्रैगुण्यता का भी अभाव है और जहां अविवेकादिकों का अभाव नहीं है तहां त्रैगुणता का भी अभाव नहीं है महत्तत्त्वमें त्रिगुणता है इसलिये अविवेकादिक भी उसमें हैं पुरुषमें त्रिगुणता नहीं है इसलिये अविवेकादिक गुण भी उसमें नहीं हैं जहां पर घटका अभाव है तहां पर घट नहीं है ऐसेही जहांपर सत्त्वादिगुण नहीं हैं तहां पर अविवेकादिक भी नहींहैं महत्तत्त्वादिकों में सत्त्वादि गुण प्रत्यक्ष प्रमाण करके सिद्ध हैं इस कारण उनमें अविवेकादिक गुण भी हैं ऐसा नियम है कि कारण के गुण कार्य में रहते हैं इसी वास्ते कारण गुणात्मकही कार्य देख पड़ता है ॥ जहां पर तन्तुरहैंगे वहां पर पटभी रहैगा और तन्तुरूप कारण में जो रूपादि गुण होवैंगे वही गुण पटरूप कार्य में भी होवैंगे जैसे तन्तु कारण गुण वाला है वैसेही पटरूप कार्य है तैसेही व्यक्त भी अपने कारण अव्यक्तके अनुसार सुख दुःख मोहादिक गुणों वाला सिद्ध होताहै अर्थात् अव्यक्त भी त्रिगुणात्मक है और अविवेकादि गुण वाला है अव्यक्त दूर है क्योंकि अतिसूक्ष्म है और व्यक्त समीप है क्योंकि स्थूल है जो व्यक्तको देखता है सोई अव्यक्तको भी देखता है क्योंकि कार्य कारण का अभेद है और कारण गुणात्मकही कार्य होताहै इसी से अव्यक्त भी पूर्वोक्तयुक्तियों करके त्रिगुणात्मक सिद्ध हुवा और यह जो पूर्वपक्षी ने पूर्व शङ्काकरी

थी कि जो लोकमें नहीं प्रतीत होता वह नहींहै सो उसका कथन मिथ्या है क्योंकि प्रधान पूर्वोक्त युक्तियोंकरके सिद्ध है परन्तु प्रतीत नहीं होती है ॥ १४ ॥

मूलम् ॥

भेदानांपरिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्ते-श्च॥कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूपस्य १५॥

पदच्छेदः ॥

भेदानाम् परिमाणात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेः च कारणकार्यविभागात् अविभागात् वैश्वरूपस्य ॥

अन्वयः	पदार्थ
भेदानाम्	= कार्यों के
परिमाणात्	= परिमाण वाला होने से
समन्वयात्	= कार्य द्वारा कारण को अनुभव करने से
+ कारणस्य	= कारण के
शक्तितः	= शक्तिअनुसार
प्रवृत्तेः	= प्रवृत्तिहोने से

अन्वयः	पदार्थ
कार्यकारणविभागात्	= कार्य और कारण के विभागसे
च	= और
वैश्वरूपस्यअविभागात्	= वैश्वरूपपृथिव्यादि पञ्चमहाभूतोंकेपरस्पर विभागरहितहोने से
+प्रधानसिद्धिः	= प्रधान की सिद्धि है

भावार्थ ॥

इसकार्यरूप जगत्का कारण अव्यक्तहै॥ भेदानांपरिमाणात्॥ कार्यों को परिमाणवाला होने से जिसपदार्थ का कोई करता है वह पदार्थ अवश्यही परिणामवाला होता है जैसे कुलाल परिणामवाले मृत्पिंड से परिमाणवाले घट को बनाता है इसी प्रकार प्रधान का कार्य महत्तत्त्वादिक भी भेदवाले होने से परिणामवाले हैं प्रधान का कार्य बुद्धि है बुद्धि का कार्य अहंकार है अहंकार का कार्य पञ्चतन्मात्रा और एकादश इन्द्रिय हैं तन्मात्रा का कार्य पञ्चमहाभूत हैं इस रीतिसे कार्यों को परिणामवाला होने से उन का कोई कारण अवश्य है सोई प्रधान है प्रधानहीं प्रथम परिणामवाली व्यक्त को उत्पन्न करती है यदि प्रधान न होती तो परिणाम से रहित व्यक्त भी उत्पन्न न होती क्योंकि कारण से विनाकार्य की उत्पत्ति नहीं होती है इसवास्ते प्रधान कारण है जिस का कार्य ये महत्तत्त्वादिक हैं॥ तथा समन्वयात्॥ जिसप्रकार समन्वय से याने कार्यद्वारा मूलकारण प्रधान की सिद्धि होती है सो दिखाते हैं जैसे लोकविषे व्रतधारी ब्रह्मचारी को देखकर उसके कुलका और उसके मूलकारण माता पिताका स्मरण होता है कि इसबालक के माता पिता ब्राह्मण हैं क्योंकि ब्राह्मण का ही धर्म ब्रह्मचर्य धारण करने का है इसीप्रकार महदादि कार्य को देखकर उनके मूलकारण प्रधान का स्मरण होता है॥ तथा शक्तितःप्रवृत्तेश्च॥ इसलोक में जो जिसकार्य के बनाने में शक्तिमान् है वही तिस के बनाने में प्रवृत्त होता है जैसे कुलाल घटके बनाने में समर्थ है इसलिये वह घटके बनाने में प्रवृत्त होता है पटके और रथ के बनाने में प्रवृत्त नहीं होता है क्योंकि उनके बनाने में वह स-

मर्थ नहीं है तैसे प्रधान भी महदादिकों के उत्पन्न करने में समर्थ है इसवास्ते उनको ही उत्पन्न करती है पुरुषके करनेमें समर्थ नहीं है इसवास्ते उसको नहीं करती है क्योंकि पुरुष अकारण है और नित्य है और कार्य कारण के विभाग होने से भी प्रधानही कारण है॥ करोतीतिकारणम्॥ जो करै या बनावै उसका नाम कारण है॥ क्रियते इतिकार्यम्॥ जो कियाजावै याने वनायाजावै उस का नामकार्य है॥ अव कारण के विभाग को दिखलाते हैं जैसे घट दधि मधु जल दुग्धादिकों के धारण करने में समर्थ है तैसे मृत्पिण्ड उनके धारण करने में समर्थ नहीं है जैसे घटका कारण मृत्पिण्ड घट को उत्पन्न करता है तैसे घटमृत्पिण्डको उत्पन्न नहीं करसक्ता है इसी प्रकार महदादिकों को देखकर तिनके कारण प्रधान का अनुमान होता है अर्थात् महदादिकों से पृथक् महदादिकों का कारण कोई है जिसका विभागरूप यह व्यक्तकार्य है॥ तथाऽविभागाद्वैश्वरूपस्य॥ विश्वनाम जगत् का है तिसका रूप याने व्यक्ति जो आकारविशेषहै उसका अविभाग होने से भी प्रधान की सिद्धी होती है जैसे त्रिलोकी का और पांच महाभूतों का परस्पर विभाग नहीं है क्योंकि पञ्चभूतात्मकही त्रैलोकी है अर्थात् तीनोंलोक महाभूतों के अन्तर्गतही हैं और पृथिवी आदिक पंचमहाभूत प्रलयकाल में पञ्चतन्मात्रा विषे अविभाग याने लय को प्राप्त होते हैं और तन्मात्रा एकादशइन्द्रिय अहंकार में लय होते हैं अहंकार बुद्धि में लय होता है बुद्धि प्रधान में लय होती है इसी रीति से तीनोंलोक प्रलयकाल विषे प्रधान में अविभाग को प्राप्त होते हैं दुग्ध दधि का अविभाग होने से दुग्ध दधिका कारण है तैसे अव्यक्त व्यक्त का कारण है॥ १५॥

मूलम् ॥

कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्त्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च ॥ परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ॥

कारणम् अस्ति अव्यक्तम् प्रवर्त्तते त्रिगुणतः समुदयात् च परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
त्रिगुणतः	तीनोंगुणों के	परिणामतः	परिणामवाला होने से
समुदयात्	साम्य अवस्था होने से	प्रतिप्रति गुणाश्रय विशेषात्	हरएक गुण केआश्रयविशेष होने से
अव्यक्तम्	अव्यक्त याने प्रधान	तत् अव्यक्तम्	वहप्रधान
कारणम्	कारण	सलिलवत्	जलकीतरह
अस्ति	है	प्रवर्त्तते	प्रवृत्तहोतीहै
च	और		

भावार्थ ॥

कारणमस्त्यव्यक्तम् ॥ अव्यक्तही सम्पूर्ण जड़ जगत्का कारण है क्योंकि अव्यक्त से महदादि संपूर्ण कार्यमात्र उत्प न्न होतेहैं ॥ त्रिगुणतः ॥ तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाका नामही अव्यक्त याने

प्रधान है ॥ समुदयाच्च ॥ जैसे गंगा के तीनों प्रवाह महादेव के शिरपर गिरकर एकप्रवाह को उत्पन्न करते हैं इसीप्रकार तीनों गुणों के समुदायसे अव्यक्त एकही व्यक्तको उत्पन्न करती है और जैसे तन्तुओं का समुदाय एकही पट को उत्पन्न करताहै इसी प्रकार अव्यक्तभी तीनों गुणों के समुदाय से महत्तत्त्वादिकों को उत्पन्न करती है ॥ प्र० ॥ जब कि एक प्रधान से संपूर्ण जगत् उत्पन्न होता है तब संपूर्ण जगत् एकरूप होना चाहिये भिन्न २ रूपवाला क्यों होताहै ॥ उ० ॥ प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् परिणामतः सलिलवत् ॥ गुणों का जो आश्रय विशेष है उसको आश्रयण करके परिणामवाला होनेसे जलकी तरह व्यक्त प्रवृत्त होती है जैसे आकाश से एकही मधुर रसवाला जल गिरता है पर नाना उपाधियों के साथ सम्बन्ध होने से अनेक भेदको प्राप्त होताहै नारिकेलिको प्राप्तहोकर मीठाहोता है बिल्वको प्राप्तहोकर तिक्त होता है आँवला को प्राप्तहोकर कसैला होता है इसीप्रकार एकही प्रधान से प्रवृत्तभये जो तीनोंलोक हैं वह भी एक स्वभाववाले नहींहोते हैं देवतों में सत्त्वगुण अधिक रहता है और रज तम उदासीन रहते हैं इसी वास्ते वे देवता अत्यन्त सुखी रहते हैं और मनुष्यों में रजोगुण उत्कट रहता है सत्त्व तम दोनों उदासीन रहते हैं इसी से मनुष्य अत्यन्त दुःखी रहते हैं और तिर्यग्योनियों में तमोगुण उत्कट रहता है सत्त्व रज दोनों उदासीन रहते हैं इस वास्ते वे अत्यन्त मूढ़ रहते हैं इन दोनों श्लोकों करके प्रधान की सिद्धि कही है अब आगे के श्लोकमें पुरुषकी सिद्धिको कहेंगे ॥ १६ ॥

मूलम् ॥

संहतपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठा

नात् ॥ पुरुषोऽस्तिभोक्तभावात्कैवल्यार्थप्रवृ-त्तेश्च ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ॥

संहतपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययात् अधिष्ठानात् पुरुषः अस्ति भोक्तभावात् कैवल्यार्थप्रवृत्तेः च ॥

अन्वयः	पदार्थ
संहतपरार्थत्वात्	= जड़ संघात को दूसरेके अर्थ होने के कारण
त्रिगुणादिविपर्ययात्	= तीनों गुणोंसे विपरीत होने के कारण
अधिष्ठानात्	= प्रकृति को पुरुषके अधिष्ठित होने के कारण
भोक्तभावात्	= भोक्ता होने के कारण
च	= और
कैवल्यार्थप्रवृत्तेः	= मोक्षके लिये प्रवृत्त होने के कारण
पुरुषः	= पुरुष
अस्ति	= है
एतत्सिद्धंभवति	= यह सिद्ध होता है

भावार्थ

पूर्व जो कहा कि व्यक्त और अव्यक्त के ज्ञान से मोक्ष होतीहै सो प्रथम व्यक्तके स्वरूप को दिखाया पश्चात् पांच हेतुओं करके

अव्यक्त को सिद्धकिया जैसे अव्यक्त सूक्ष्महै तैसे पुरुषभी सूक्ष्म है तिस पुरुषकी सिद्धि अत्र अनुमानप्रमाण करके करते हैं ॥ पुरुषोऽस्ति ॥कस्मात् ॥ संहतपरार्थत्वात् ॥ पुरुष है क्योंकि संघात महत्तत्त्वादि अपने वास्तेनहींहै परंतु दूसरे के लियेहैं याने वे दूसरे के भोग्यहैं वे जड़हैं जड़काजड़ भोग नहीं होसक्ताहै किंतु जड़का भोक्ता चेतनही होता है जो इस संघात का भोक्ता चेतन है वही पुरुष है इस प्रकार के अनुमान करके पुरुष की सिद्धि होती है और जैसे किसी उत्तम मकान में पलंग बिछा है तिसपर सेज कसी है मसनन्द लगा है और अनेक प्रकारके खान पानादिक भोजन भी वहां पर रक्खेहैं उनको देखकर मालूम होता है कि वे अपने लिये आप नहीं हैं किंतु किसी पुरुषके लिये हैं जो उसका भोक्ता है इसी तरह महत्तत्त्वादि संघातभी पराये के लिये हैं याने पुरुष के भोगके लियेहैं पञ्चमहाभूतों का परिणामरूप यह स्थूल शरीरभी पुरुषका भोग्य है और पूर्व जो कहा है कि त्रिगुणात्मक अविवेकी व्यक्तभी है और अव्यक्तभीहै और तिनसे विपरीत पुरुषहै इसीमें और हेतुको भी दिखातेहैं ॥ त्रिगुणादिविपर्ययात् ॥ तीनों गुणोंके विपर्यय याने अभावहोनेसे पुरुष गुणातीत है अर्थात् प्रधानादि तीनों गुणों के सहितहैं और पुरुष तीनों गुणों से रहितहै अधिष्ठान से भी पुरुषकी सिद्धिहोतीहै जैसे रथकूदने और चलने वाले घोड़ों करके युक्त और सारथी करके प्रेरणा कियाहुवा अपनी क्रिया में प्रवृत्तहोताहै और जैसे आत्माको आश्रयण करके शरीर भी प्रवृत्तहोता है तैसे ही पुरुषको आश्रयणकरके प्रधान भी प्रवृत्त होतीहै यहवार्ता षष्टितन्त्रनामक ग्रन्थमें कहाहै इसदृष्टांतसे भी पुरुष की सिद्धिहोतीहै और जैसे मधुर अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय

इन षट्रसों करके युक्त अन्न अथवा भोजन किसी पुरुषके लिये है इसी प्रकार प्रधानभी पुरुषके भोगके लिये महत्तत्त्वसे लेकर शरीर-पर्यन्त उत्पन्नकरती है ॥ तथाकैवल्यार्थंप्रवृत्तेश्च ॥ और कैवल्य जोमोक्षहै तिस्के तरफ मनुष्यों की प्रवृत्तिहोनेसे भी पुरुषकी सिद्धि होतीहै क्योंकि सब विद्वान् और अविद्वान् दुःखों की निवृत्ति की इच्छा करते हैं इसीसे जानाजाता है कि जड़संघातसे भिन्न कोई आत्मा है जिसको मोक्ष की इच्छा होती है १७ ॥ प्र० ॥ पूर्वोक्त युक्तियोंसे जो संघातसे भिन्न आत्मा सिद्ध कियागयाहै वह आत्मा सब शरीरों में एकही है मालाके सूत्रकी तरह अथवा हरएक शरीर में भिन्नभिन्न है ॥ उ० ॥

मूलम् ॥

जननमरणकरणानाम् प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च ॥ पुरुषबहुत्वंसिद्धंत्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव १८ ॥

पदच्छेदः ॥

जननमरणकरणानाम् प्रतिनियमात् अयुगपत्प्रवृत्तेः च पुरुषबहुत्वम् सिद्धम् त्रैगुण्यविपर्ययात् च एव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
जननमरण करणानाम् =	जन्ममरण और इंद्रिय इनका	प्रतिनियमात् =	हरएकपुरुषकेसाथपृथक् २ नियतहोनेसे

+ च तेषाम् = और उनका
अयुगपत्प्रवृत्तेः = एककाल में न प्रवृत्ति होनेसे
च = और
त्रैगुण्यविपर्ययात् = तीनोंगुणों के भेदसे
एव = निश्चयकरके
पुरुषबहुत्वम् = पुरुषका नानात्व
सिद्धम् = सिद्धहोताहै

भावार्थ ॥

जन्ममरण और इन्द्रियोंका हरएक पुरुषके साथ पृथक् २ नियम होनेसे पुरुष की नानात्वता सिद्ध होती है यदि एकही जीवात्मा होता तब एक के जन्महोते समय सबका जन्म होजाता और एक के मरनेसे सबका मरण होजाता और एक के काने या अन्धे या बहरे होने से सभी काने या अन्धे या बहरे होजाते पर ऐसा तो नहीं होता है इसी से सिद्ध होताहै कि पुरुष अनेक हैं क्योंकि हरएक के जन्मका तथा मरणका तथा इन्द्रियों का नियम उसीके साथ है जिसकाल में एक जन्मता है तिस कालमें दूसरा नहीं जन्मता किन्तु वह भिन्नकाल में जन्मताहै जिसकालमें एक मृत्यु को प्राप्तहोताहै दूसरा तिसकालमें नहीं मरताहै उसका मरणकाल पृथक् नियतहै जब एक अन्धा होताहै या काना होताहै या बहरा होता है उसीकालमें दूसरा ऐसा नहीं होताहै क्योंकि उनके इन्द्रियों का नियम अपने २ आत्मा के साथ अर्थात् हरएक आत्माके इन्द्रिय भिन्न २ हैं और इसी से सिद्ध होता है कि आत्मा अनेक है ॥ तथा युगपत्प्रवृत्तेश्च ॥ युगपत् नाम एक कालका है न युगपत् अथवा अयुगपत् वह है जो एककाल में न होवै एक

काल में सब पुरुषोंकी प्रवृत्तिके न होनेसे भी यह सिद्ध होताहै कि पुरुष अनेकहै यदि पुरुष एक होता तो एक पुरुषको धर्म में प्रवृत्त होने से सब को धर्म्म में प्रवृत्त होना चाहिये था या एक को अ-धर्म्म में प्रवृत्त होने से सब को अधर्म्म में प्रवृत्त होना चाहिये था पर ऐसातो नहीं होताहै किंतु जब एक धर्म में प्रवृत्तहै तब दूसरा अधर्म में प्रवृत्त है किसी की प्रवृत्ति वैराग्य में किसी की ज्ञान में किसी की अज्ञान में होती है याने भिन्न २ प्रवृत्ति देखने में आ-तीहै इससे भी सावित होता है कि पुरुष अनेक है ॥ किञ्चान्यत् त्रैगुण्यविपर्ययात् ॥ तीनों गुणोंको परस्पर विपर्यय याने उलटा पुलटा देखने से पुरुष की अनेकता सिद्ध होतीहै जैसे एक के तीन पुत्र उत्पन्न हुयेहैं एक पुत्रका सात्त्विकस्वभाव है वह सु-खीहै दूसरे पुत्रका राजसीस्वभाव है वह दुःखी है तीसरे पुत्र का तामसीस्वभाव है वह मूढ़है इसी रीति से गुणोंका विपर्यय देखने सेभी पुरुषकी नानात्वता सिद्ध होती है ॥ १८ ॥ अब पुरुषके अ-कर्तापने को दिखाते हैं ॥

मूलम् ॥

तस्माच्चविपर्यासात्सिद्धंसाक्षित्वमस्यपुरुषस्य॥
कैवल्यंमाध्यस्थ्यंद्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ॥

तस्मात् च विपर्यासात् सिद्धम् साक्षित्व-म् अस्य पुरुषस्य कैवल्यम् माध्यस्थम् द्र-ष्टृत्वम् अकर्तृभावः च ॥

अन्वयः	पदार्थ
तस्मात्	= इसलिये
+ गुणानाम्	= गुणोंके
विपर्यासात्	= विपर्यय से याने तीनों गुणोंसे विरुद्ध धर्मवाला होने के कारण
अस्यपुरुषस्य	= इस पुरुष को
साक्षित्वम्	= साक्षीरूपता

अन्वयः	पदार्थ
सिद्धम्	= सिद्धहै
च	= और
अकर्तृभावः	= अकर्तापना
माध्यस्थम्	= मध्यस्थपना
द्रष्टृत्वम्	= द्रष्टापना
च	= और
कैवल्यम्	= गुणातीतता
+ अस्य पुरुषस्य	= इसपुरुष को
+ सिद्धम्	= सिद्धहै

भावार्थ॥

तस्माच्च विपर्यासाच्च ॥ जिस कारण पूर्वोक्त तीनों गुणोंके विपर्यय से याने विपरीत होनेसे पुरुष निर्गुण विवेकी भोक्ता है तिसी कारण से कर्तारूप जो सत्त्व रज तम तीन गुणहैं तिनका वह साक्षी है और गुण जो कर्ता है वही प्रवृत्तहोतेहैं साक्षी प्रवृत्त नहीं होताहै वह तीनों गुणोंसे रहित है याने भिन्नहै मध्यस्थहै जैसे कहीं ग्रामीण खेत के जोतने में प्रवृत्तहै और उसके पास कोई परिव्राजक मध्यस्थ होकर देखताहै तो वह उसकी क्रियामें प्रवृत्त नहीं होताहै तैसेही गुणोंके प्रवृत्त होनेपर भी पुरुष प्रवृत्त नहीं होता है इसी कारण पुरुष मध्यस्थहै अकर्ताहै और द्रष्टाभी है॥१६॥प्र०॥ जब कि पुरुष अकर्ता है तब फिर किसलिये निश्चय करता है जो मैं धर्म को करूंगा अधर्म को नहीं करूंगा जिसवास्ते निश्चय क-

रता है इस वास्ते वह कर्ताही सिद्ध होता है अकर्ता सिद्ध नहीं होता ॥ उ० ॥ १६ ॥

मूलम् ॥

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिवलिङ्गम् ॥
गुणकर्तृत्वेचतथाकर्तेवभवतीत्युदासीनः २० ॥

पदच्छेदः ॥

तस्मात् तत् संयोगात् अचेतनम् चेतनावत् इव लिङ्गम् गुणकर्तृत्वे च तथा कर्ता इव भवति इति उदासीनः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मात्	इसलिये	च	और
संयोगात्	पुरुषकेसंयोगसे	गुणकर्तृत्वे	गुणोंकेकर्तृत्वसम्बन्धसे
तत्	वह	तथा	उनके अनुसार
लिङ्गम्	महत्तत्त्वादिक	इति	पूर्वोक्त
अचेतनम्	अचेतनहोतेहुवे	उदासीनः	उदासीनपुरुषभी
चेतनावत्	चेतनकी	कर्ताइव	कर्तासा
इव	तरह	+भासते	प्रतीत होता है
+भासते	भासतेहैं		

भावार्थ ॥

कर्ताइव ॥ पुरुष कर्ता की तरह प्रतीत होता है वास्तवसे क

र्ता नहीं जैसे लोकमें शीतगुणके साथ जब घटका संयोग होता है तब घटभी शीतगुणवाला प्रतीत होताहै जब उष्णगुणकेसाथ घटका संयोग होताहै तब उष्णगुणवाला प्रतीत होता है घटमें शीतगुण वा उष्णगुण नहीं है इसी प्रकार महत्तत्त्वादिकों में चेतनता नहीं है परन्तु चेतनपुरुषके संयोग से उन में चेतनता प्रतीत होतीहै अर्थात् चेतनकी तरह महत्तत्त्वादिक भी प्रतीत होते हैं इसी कारण गुणही कर्ता पुरुष कर्ता नहीं है यद्यपि लोक में ऐसा व्यवहार होताहै कि पुरुष कर्ता है भोक्ता है गंता है परन्तु वास्तव में गुणही कर्ता है पुरुष उदासीन स्थितहै याने गुणों के सम्बन्ध से पुरुषही कर्ताकी तरह प्रतीत होताहै वास्तव से पुरुष अकर्ताहै ॥ और जैसे अचौर पुरुष भी चोरोंके संग करके चोरही जानाजाता है तैसे तीनों गुण कर्ता हैं उनके साथ मिलनेसे अकर्ता पुरुष कर्ताकी तरह प्रतीत होताहै पूर्वोक्त रीति से व्यक्त अव्यक्त और पुरुष इनका विभाग दिखायागया जिसके ज्ञान से मोक्षकी प्राप्ति होती है॥२०॥ प्र० ॥ प्रधान और पुरुषके संघातमें क्याकारण है ॥ उ० ॥

मूलम् ॥

पुरुषस्यदर्शनार्थं कैवल्यार्थंतथाप्रधानस्य पङ्ग्वन्धवदुभयोरपिसंयोगस्तत्कृतःसर्गः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ॥

पुरुषस्य दर्शनार्थम् कैवल्यार्थम् तथा प्रधानस्य पङ्ग्वन्धवत् उभयोः अपि संयोगः तत्कृतः सर्गः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
पुरुषः	= पुरुष	च	= और
प्रधानम्	= प्रधान	पुरुषस्य	= पुरुषके
पंग्वन्धवत्	= पंगुअन्धकी तरह	कैवल्यार्थम्	= मोक्षकेलिये
+स्तः	= हैं	उभयोः	= उनदोनोंका
पुरुषस्य	= पुरुषका	+यः	= जो
+च	= और	संयोगः	= संयोगहै
प्रधानस्य	= प्रधानका	तत्कृतः	= तिससंयोग कृतसे
संयोगः	= संयोग	पुरुषस्य	= पुरुषको
+प्रधानस्य	= प्रधानके	सर्गः	= संसार है
दर्शनार्थम्	= दर्शनके लिये		

भावार्थ ॥

पुरुपस्यदर्शनार्थम्॥पुरुपका प्रधानकेसाथ जो संयोगहै सो प्रधान के देखनेके वास्तेहै पुरुप प्रकृतिको और प्रकृतिकेकार्य महत्तत्त्वादिक को देखता है और प्रधानका संयोग पुरुपकेसाथ पुरुपके दर्शनार्थ है और वही संयोग पुरुपके मोक्षके लियेभीहै पंगुअन्धकी तरह प्रकृति पुरुपकासंयोग है मार्गमेंवहुतसे लोकजातेथे तिनमें एक पंगु और एक अंधाभी अपने सम्वन्धियोंकेसाथ जातेथे दैवगतिसे एक चोरोंकाधाड़ा वास्ते लूटनेके पड़ा तव सव लोक भागगये पंगु अन्धके सम्वन्धी भी तिनको त्यागकर भागगये दैवगतिसे इधर उधर भ्रमतेहुये पंगु अन्धका परस्पर संयोग होगया और अपने २ अर्थ सिद्धकरनेकेलिये आपसमें मित्रताकी अन्धेने पंगुको अपने

कांधे पर उठालिया पंगुको दर्शनशक्ति तो थी परंतु गमनशक्ति न थी अन्धे में गमनशक्तिथी दर्शनशक्ति न थी पंगुकरके बतायेहुये मार्ग में अन्धा चलने लगा चलते चलते दोनों अपने इच्छित स्थानपर पहुंचगये इसीप्रकार पंगुकी तरह पुरुष में दर्शनशक्ति तो है परन्तु क्रियाशक्ति नहीं है और अन्धवत् प्रधान में दर्शनशक्ति तो नहीं है किंतु क्रियाशक्तिहै और जैसे पंगु और अन्धेका विभाग अपने मंजिलपर पहुंचनेसे होताहै तैसेही प्रधान भी पुरुषको मोक्ष करके पुरुषसे हटजातीहै और पुरुष प्रधानसे पृथक् होकर मोक्षको प्राप्तहोताहै प्रधान और पुरुष दोनोंके कृतार्थ होनेपर उनका विभाग होजाताहै और जैसे स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है तैसेही प्रधान पुरुषके संयोगसे सृष्टिकीभी उत्पत्ति होतीहै ॥ २१ ॥

मूलम् ॥

प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माद्गणश्चषोडशकः ॥
तस्मादपिषोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रकृतेः महान् ततः अहंकारः तस्मात् गणः च षोडशकः तस्मात् अपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रकृतेः	= प्रकृतिसे	महान्	= महत्तत्त्वहै

ततः = तिसमहत्त्वसे	+षोडशकात् = सोलहगणोंमें से
अहंकारः = अहंकार है	यानिपञ्चतन्मात्राणि = जो पञ्चतन्मात्राहैं
च = और	+तेभ्यः = तिन
तस्मात् = तिसअहंकारसे	पञ्चभ्यः = पञ्चतन्मात्रासे
षोडशकः = सोलह	
गणः = गणहैं	पञ्चमहाभूतानि = पञ्चमहाभूतहैं ॥
तस्मात् = तिस	

भावार्थ ॥

प्रकृति प्रधान ब्रह्म अव्यक्त बहुधानक माया ये छः पर्य्यायशब्द प्रकृतिकेहैं महान् बुद्धि आसुर मति ख्याति ज्ञान प्रज्ञा ये सात पर्य्याय शब्द महत्तत्त्वकेहैं अहंकार भूतादि वैकृत तैजस अभिमान ये पांच पर्य्यायशब्द अहंकारकेहैं प्रकृतिसे महत्तत्त्व महत्तत्त्वसे अहंकार अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा और एकादश इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं और पंचतन्मात्रासे पञ्चमहाभूत उत्पन्नहोते हैं शब्दतन्मात्रा स्पर्शतन्मात्रा रूपतन्मात्रा रसतन्मात्रा गन्धतन्मात्रा ये पांच तन्मात्रा हैं श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रियहैं वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रियहैं और एक मन मिलाकर सबग्यारह इन्द्रियहैं पांचतन्मात्रा के सहित वे षोड़शगण कहेजाते हैं ॥ पञ्चभ्यः पञ्चमहाभूतानि ॥ पञ्चतन्मात्रासे फिर पञ्चमहाभूत उत्पन्न होतेहैं शब्दतन्मात्रासे आकाश स्पर्शतन्मात्रासे वायु रूपतन्मात्रासे तेज रसतन्मात्रासे जल उत्पन्नहोता है और गन्धतन्मात्रासे पृथिवी उत्पन्न होतीहै महत्तत्त्व से लेकर पृथिवी उत्पन्न होती है महत्तत्त्वसे लेकर

महाभूतों पर्य्यन्त तेइस भेद व्यक्तके कथनकिये हैं और अव्यक्तके स्वरूप का और पुरुषके स्वरूपका निरूपण कियागया है ये सब मिलाकर पचीस तत्त्वहुये इन्हीं करके तीनों लोकव्याप्तहैं और इन्हीं पचीस तत्त्वोंके स्वरूप के ज्ञानसे मोक्ष होती है॥ प्र०॥ प्रकृति पुरुष बुद्धि अहंकार पञ्चतन्मात्रा एकादशइन्द्रिय पञ्चमहाभूत ये पञ्चविंशतितत्त्व कथन कियेगये हैं इनमेंसें महत्तत्त्वका क्या लक्षणहै? इसका उत्तर आगे कहतेहैं २२॥

मूलम्॥

अध्यवसायोबुद्धिर्द्धर्मोज्ञानं विरागऐश्वर्यम्॥
सात्त्विकेमतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम् २३॥

पदच्छेदः॥

अध्यवसायः बुद्धिः धर्मः ज्ञानम् विरागः ऐश्वर्यम् सात्विकम् एतत् रूपम् तामसम् अस्मात् विपर्यस्तम्॥

अन्वयः	पदार्थ
बुद्धिः	= बुद्धि
अध्यवसायः	= निश्चयात्मक है
धर्मः	= धर्म
ज्ञानम्	= ज्ञान
विरागः	= वैराग्य
ऐश्वर्यम्	= ऐश्वर्य
एतद्रूपम्	= यह रूप

अन्वयः	पदार्थ
सात्त्विकम्	= सात्त्विकबुद्धेःसतोगुण बुद्धिके हैं
च	= और
तस्मात्	= तिससात्त्विक बुद्धि से
तामसम्	= तमोगुणरूप बुद्धि
विपर्यस्तम्	= विपरीत है॥

भावार्थ ॥

अध्यवसायोबुद्धिर्लक्षणम् ॥ अध्यवसायनाम निश्चयकाहै जैसे इसीबीजमें अंकुर उत्पन्न होगा यह घट है यह पट है ऐसा जो निश्चयहै इसीकानाम बुद्धि है यही बुद्धि का लक्षणहै सो बुद्धि सात्त्विक तामसरूपों के भेदकरके आठ अंगोंवाली है तिनमें बुद्धिके सात्त्विक रूप चार प्रकारकेहैं धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तिनमेंसे प्रथम धर्म को दिखाते हैं दया दान यम नियमादि रूप धर्महैं तिनमें से अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य्य परिग्रह ये यम हैं शौच संतोष तप स्वाध्याय ईश्वर की भक्ति ये नियम हैं और ज्ञान प्रकाश अवगम भान ये ज्ञानके पर्यायशब्द हैं ॥ भिन्नानुपूर्विकत्वेसति एकार्थ बोधकत्वंपर्यायत्वम् ॥ जिन शब्दोंके अक्षरोंकी आनुपूर्वी भिन्न भिन्नहो परन्तु एकही अर्थको कहनेवाले हों उसीका नाम पर्याय है जैसे ज्ञान प्रकाशादि शब्द भिन्न भिन्न आनुपूर्वीवाले हैं अर्थात् ज्ञान में प्रथम ज्ञा है फिर न है प्रकाशमें प्रथम प्र है फिर का फिर श है पर एकही अर्थके बोधकहैं अतएव पर्य्यायशब्द कहेजाते हैं इसीतरह और स्थानमें भी पर्यायशब्दों को जानलेना ज्ञान दो प्रकार का है एकतो बाह्यज्ञान है दूसरा अन्तरज्ञानहै दोनों में प्रथम बाह्यज्ञान को दिखाते हैं शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष इन षट्अंगोंके सहित वेद पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्र ये सब बाह्यज्ञान हैं और प्रकृति पुरुषका जो ज्ञानहै वह अन्तरज्ञानहै सत्त्वरज तम इन तीनों गुणोंकी साम्य अवस्था का नाम प्रकृतिहै और निर्गुण व्यापक चेतनका नाम पुरुष है दोनों में से बाह्यज्ञान करके लोकों का अनुराग लोकोंमें होता है और अन्तरज्ञान करके मोक्ष होतीहै वैराग्य भी दो प्रकार का है एक बाह्यहै दूसरा अन्तर

है इष्ट विषयों के संग्रह और रक्षा करने में जो दुःख होताहै उसको देखकर और नाश हिंसादि दोषों को भी देखकर उनकी तृष्णा से रहित होना बाह्यवैराग्य कहाताहै और विरक्त पुरुषको जब ब्रह्मलोक के भोगोंसे लेकर प्रधानपर्यंत स्वप्नवत् और इन्द्रजालवत् लगते हैं याने उनमें जब दुःखबुद्धि उत्पन्न होती है तब उसको अन्तर वैराग्य कहते हैं ऐश्वर्य आठ प्रकार का है अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व इन आठसिद्धियों में ही सम्पूर्ण कामनाओं की समाप्ति होती है अणु होकर अर्थात् अतिसूक्ष्म होकर जगत् में विचरना इसीका नाम अणिमा है और अतिमहान् याने जितना वड़ा होजाने की इच्छाहो उतनाही वड़ा होजाना इसका नाम महान् है और अतिसूक्ष्म याने हलका होकर पुष्पकी रेणुके अग्रभाग में स्थिर होजाना इसका नाम लघिमाहै और जहां तहां वैठेहुये ही जिस वस्तुकी इच्छाहो वह प्राप्त होजावै इसका नाम प्राप्ति है और जिस काम करने की इच्छाहो उसको करलेना इसी का नाम प्राकाम्य है और सब का स्वामी होकर तीनों लोकोंको प्रेरणा करना इसका नाम ईशित्वहै और सब लोकोंको अपने वशमें करलेना इसका नाम वशित्वहै अर्थात् स्वेच्छापूर्वक ब्रह्मादि लोकों में भोगों को भोगना यही वशित्व है धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य ये चारबुद्धिके सात्त्विकरूप हैं जिसकाल में सत्त्वगुण करके रज तम का तिरस्कार होजाता है उस कालविषे पुरुषबुद्धि के गुण जो धर्मादिक हैं तिनको प्राप्त होता है और तमोगुण तिससे विपर्य्यय है अर्थात् विपरीत याने उलटा है जिस काल में तमोगुण करके सत्त्व रजका तिरस्कार हो जाता है उस समय अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य्य

ये बुद्धि में उत्पन्न होतेहैं पूर्व्वोक्त रीति से यह सिद्ध हुआ कि सात्विक तामस रूपों करके अष्ट अंगों के सहित त्रिगुणात्मक अव्यक्त से बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ २३ ॥ बुद्धिके लक्षण को कह कर अहङ्कार के लक्षण को कहते हैं ॥

मूलम् ॥

अभिमानोऽहंकारस्तस्माद्द्विविधःप्रवर्त्तते रागः ॥
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रः पञ्चकश्चैव ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ॥

अभिमानः अहङ्कारः तस्मात् द्विविधः प्रवर्त्तते रागः एकादशकः च गणः तन्मात्रः पञ्चकः च एव ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अभिमानः	= अभिमान	प्रवर्त्तते	= प्रवृत्त होती है
एव	= ही	एकादशकः	= एकादश
अहङ्कारः	= अहङ्कार है	गणः	= इन्द्रियगण
तस्मात्	= तिसअहङ्कारसे	च	= और
द्विविधः	= दोप्रकारका	पञ्चकः	= पांच
रागः	= राग याने सृष्टि	तन्मात्रः	= तन्मात्रा ॥

भावार्थ ॥

अभिमान नाम अहङ्कार का है तिस अहङ्कार से दो प्रकारकी

सर्ग याने सृष्टि उत्पन्न होती है एकादश इन्द्रिय और पांच तन्मात्रा ॥ २४ ॥

मूलम् ॥

सात्त्विकएकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतादहंकारात् ॥ भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ॥

सात्त्विकः एकादशकः प्रवर्त्तते वैकृतात् अहङ्कारात् भूतादेः तन्मात्रः सः तामसः तैजसात् उभयम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
वैकृतात्	= वैकृतनामक	सःतामसः	= सो तामस है
अहङ्कारात्	= अहंकारसे	तैजसात्	= तैजस अहङ्कार से
सात्त्विकः	= सात्त्विक	उभयम्	= दोनों याने एकादशइन्द्रिय और पञ्च तन्मात्रा उत्पन्न होती हैं ॥
एकादशकः	= एकादश इन्द्रिय		
प्रवर्त्तते	= प्रवृत्त होते हैं		
भूतादेः	= भूतादि अहंकारसे		
तन्मात्रः	= पञ्चतन्मात्रा होती हैं		

भावार्थ॥

जब अहङ्कार में सत्त्वगुण उत्कट होताहै और रजो और तमो दोनोंगुण तिरस्कृत होतेहैं तब वह अहङ्कार सात्त्विक अहङ्कार होताहै तिस सात्त्विक अहङ्कारका पूर्व्वले आचार्यों ने वैकृत अहङ्कार नाम रक्खाहै तिस वैकृत अहङ्कारसे एकादश इन्द्रिय उत्पन्न होती हैं॥ भूतादेस्तन्मात्रः सतामसः॥ जब तमोगुण अहङ्कार में उत्कट होताहै और सत्त्व रज तिस करके तिरस्कृत होते हैं तब उसका नाम तामस अहङ्कार है तिस तामस अहङ्कारका नाम पूर्व्वले आचार्यों ने भूतादि रक्खा है क्योंकि वह भूतोंका आदि कारणहै और उस भूतादि अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रा उत्पन्न होती हैं॥ किञ्च-तैजसादुभयम्॥ जब रजोगुण अहङ्कार में उत्कट होता है और उस करके सत्त्व तम दोनों तिरस्कृत होजाते हैं तब उस अहङ्कार का नाम तैजस होता है तिस तैजस अहङ्कार से एकादश इन्द्रिय गण और पञ्चतन्मात्रा उत्पन्न होतीहैं और सात्त्विक अहङ्कार वैकृत्य होकर याने विकारी होकर और तैजस अहङ्कारकी सहायता लेकर एकादश इन्द्रियों को उत्पन्न करता है क्योंकि सात्त्विक में तो क्रिया है नहीं और तैजस में क्रिया है इस वास्ते सात्त्विक तैजस करके युक्त हुआ एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति में समर्थ होताहै तैसेही तामस भूतादि अहङ्कार भी क्रिया से रहित होने के कारण क्रियावाले तैजस अहङ्कार के साथ मिलकर तन्मात्रा के उत्पन्न करने में समर्थ होता है इसी वास्ते कहा है कि तैजस से दोनों एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्रा उत्पन्न होती हैं॥ २५॥

जो वैकृत सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न होता है तिस का क्या नाम है॥ १॥

मूलम्

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनकानि॥ वाक्पाणिपादपायूपस्थान् कर्म्मेन्द्रियाण्याहुः॥ २६॥

पदच्छेदः॥

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनकानि वाक्पाणिपादपायूपस्थान् कर्म्मेन्द्रियाणि आहुः॥

अन्वयः		पदार्थ
चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसन स्पर्शनकानि	=	चक्षुश्रोत्र घ्राण रसना त्वक् इन को
बुद्धीन्द्रियाणि	=	ज्ञानेन्द्रियां
आहुः	=	कहते हैं
वाक्पाणिपादपायूप स्थान्	=	वाक् पाणि पाद गुदा लिंग इन को
कर्मेन्द्रियाणि	=	कर्मेन्द्रियां
आहुः	=	कहते हैं॥

भावार्थ॥

चक्षुसे लेकर स्पर्शन पर्यन्त ज्ञानेन्द्रिय कहलाते हैं स्पर्श कियाजाये जिस करके तिसका नाम स्पर्शन है तिसीका नाम त्वगिन्द्रिय भी है और जिन करके शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पांच विषयोंका ज्ञान होवे उनका नाम ज्ञानेन्द्रिय है और वाक् हाथ पांव गुदा लिंग इनका नाम कर्मेन्द्रिय है क्योंकि इन करके कर्म याने क्रिया कीजाती है तिन पांचों में से वाणी बोलती है हाथ नाना प्रकार के व्यापारों को करताहै और पाद गमनागमन व्यापार को

करताहै गुदा मलको त्याग करती है लिंग आनन्द उत्पन्न करताहै इस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का स्वरूप कथन किया गया है २६ मनका क्या स्वरूप है और उसका क्या व्यापार है ॥उ०॥

मूलम् ॥

उभयात्मकमत्रमनः संकल्पकमिन्द्रियञ्च साधर्म्यात् ॥ गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं वाह्यभेदाश्च ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ॥

उभयात्मकम् अत्र मनः संकल्पकम् इन्द्रियम् च साधर्म्यात् गुणपरिणामविशेषात् नानात्वं च वाह्यभेदाः च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
उभयात्मकंमनः	दोस्वरूप मनका है	गुणपरिणामविशेषात्	गुणों के परिणाम विशेषके कारण
अत्र	उन में से	च	और
+एकम्	एक	वाह्यभेदाः	वाह्यविषयों के भेद के कारण
सङ्कल्पकम्	सङ्कल्परूप है	नानात्वम्	इन्द्रियों को नानात्व है
च	और		
+इतरम्	दूसरा		
इन्द्रियम्	इन्द्रियरूपहै		
साधर्म्यात्	साधर्मताके कारण		

भावार्थ ॥

एकादश इन्द्रियों के समुदाय में मन उभयरूप है वह ज्ञानेन्द्रियों के साथ ज्ञानेन्द्रियों की तरह वर्त्तता है और कर्मेन्द्रियों के साथ कर्मेन्द्रियों की तरह वर्त्तता है क्योंकि मनही ज्ञानेन्द्रियों की वृत्तिको कल्पना कराता है और मनही कर्मेन्द्रियों की प्रवृत्ति को भी कल्पना कराता है इसी वास्ते मन उभयरूपहै अर्थात् सङ्कल्परूप भी है और इन्द्रियरूप भी है ॥ साधर्म्यात् ॥ समान धर्मतासे याने सात्त्विक अहङ्कार से ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय मनके सहित उत्पन्न होते हैं तिनमें से मनकी सङ्कल्पवृत्ति है और ज्ञानेन्द्रियों की शब्दादिक वृत्तियां होती हैं और कर्मेन्द्रियोंकी वचनादिक वृत्तियां होती हैं ॥ प्र० ॥ भिन्नभिन्न इन्द्रियां भिन्न भिन्न विषयोंको ग्रहण करती हैं सो ईश्वर करके प्रेरित हुई हुई ग्रहण करती हैं या अपने स्वभाव से ही ग्रहण करती हैं बुद्धि आदिकों करके तो वे ग्रहण नहीं करसक्ती हैं क्योंकि प्रधान की तरह बुद्धि और अहङ्कार जड़ हैं और पुरुष करके भी ग्रहण नहीं करसक्ती हैं क्योंकि पुरुष अकर्ता है तब फिर किस करके इन्द्रियां विषयों को ग्रहण करती हैं ॥ उ० ॥ गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध वचन आदान याने ग्रहण विहार याने गमन उत्सर्ग याने त्याग और आनन्द ये दश इन्द्रियों के भिन्न भिन्न विषय हैं और मनका सङ्कल्प विषयहै सो गुणोंके परिणाम विशेष से और बाह्य विषयों के भेदसे इन्द्रियों को नानात्वहै और स्वभाव से अपने २ विषयों को ग्रहण करती हैं ईश्वर करके प्रधान करके बुद्धि करके अहङ्कार करके या पुरुष करके प्रेरित हुई विषयों को ग्रहण नहीं करती हैं ॥प्र०॥ गुण तो आपही अचेतनहैं

उन करके इन्द्रियां कैसे प्रवृत्त होसक्ती हैं॥ उ०॥ जैसे जड़ दुग्ध की प्रवृत्ति वत्सकी पुष्टिके लिये स्वभावसे ही होती है वैसेही गुणों की प्रवृत्ति स्वभावसे ही होती है और वैसेही इन्द्रियों की प्रवृत्ति भी स्वभावसे ही होती है और तैसेही अज्ञपुरुष की मुक्तिके लिये प्रधानकी भी प्रवृत्ति होती है॥ २७॥

मूलम्॥

शब्दादिषुपञ्चानामालोचनमात्रमिष्यतेवृत्तिः॥
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्चपञ्चानाम्॥२८॥

पदच्छेदः॥

शब्दादिषु पञ्चानाम् आलोचनमात्रम् इष्यते वृत्तिः वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाः च पञ्चानाम्॥

अन्वयः	पदार्थ
शब्दादिषु	= शब्दादिक विषयों में
पञ्चानाम्	= पञ्चज्ञानेन्द्रियों के
वृत्तिः	= धर्म्म
आलोचनमात्रम्	= ज्ञानमात्र
इष्यते	= कथन किया जाता है
च	= और
पञ्चानाम्	= पञ्चज्ञानेन्द्रियोंका
वृत्तिः	= धर्म्म
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाः	= वचनआदान याने ग्रहण विहरण याने गमन उत्सर्ग याने त्याग और आनन्द है

भावार्थ ॥

मूलमें जो आलोचनमात्र कहा है सो मात्र शब्दका अर्थ विशेष है जैसे किसीने कहा कि यह भिक्षु भिक्षामात्र को ग्रहण करता है अधिक नहीं तैसे चक्षु भी रूपमात्र को ग्रहण करता है रसादिकों को नहीं ग्रहण करता है जिह्वा रसमात्र को घ्राण गन्धमात्र को श्रोत्र शब्दमात्र को त्वचा स्पर्शमात्र को ग्रहण करता है इसी प्रकार कर्मेन्द्रिय भी अपने अपने विहार कोही ग्रहण करते हैं वाक् वचन को हस्त ग्रहण को पाद गमन को पायु मल के त्याग को उपस्थ आनन्द को ग्रहण करता है एक दूसरे इन्द्रिय के विषय को ग्रहण नहीं करता है ॥ २८ ॥

अब बुद्धि अहङ्कार मन इनके व्यापारोंका निरूपण करते हैं ॥

मूलम् ॥

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या ॥
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्यावायवः पञ्च ॥२९॥

पदच्छेदः ॥

स्वालक्षण्यम् वृत्तिः त्रयस्य सा एषा भवति असामान्या सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्याः वायवः पञ्च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
त्रयस्य=	तीनोंका याने मन बुद्धि और अहङ्कार इन तीनोंमें से हर एकका	स्वालक्षण्यं=	अपना लक्षण ही
		वृत्तिः=	उसकी वृत्ति
		भवति=	होती है
		सा=	सोई

एषा = यह
असामान्या = असाधारण वृत्ति है
च = और
सामान्यकरणवृत्तिः = सामान्यतौर पर इन्द्रियों की वृत्ति
पञ्च = पांचों
प्राणाद्याः = प्राणादि
वायवः = वायु हैं ॥

भावार्थ ॥

अपने लक्षणमें ही जो वर्त्ते उसका नाम स्वालक्षण्यवृत्ति है ऐसे मन बुद्धि अहङ्कार तीनहैं बुद्धि का लक्षण जो अध्यवसाय है वही बुद्धि की वृत्ति है और अहङ्कार का जो लक्षण अभिमान है वही अहङ्कार की वृत्ति है और मन का लक्षण जो सङ्कल्प है वही मन की वृत्तिहै और मन बुद्धि अहङ्कार इन तीनोंकी स्वालक्षण्यवृत्ति जो कहीगईहै सोई असामान्यावृत्ति याने असाधारणवृत्ति है और जो पूर्व्व ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति कहीगई है वह भी असामान्यावृत्ति है अब सामान्य वृत्ति को कथन करते हैं ॥ सामान्येनकरणावृत्तिः सामान्यकरणवृत्तिः ॥ सामान्यरूप से जो सब इन्द्रियों की वृत्ति होवै उसका नाम सामान्यकरणवृत्ति है सोई प्राणादि पञ्चवायुहैं प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान ये पांच प्रकार के प्राणवायुहैं इन्हीं करके सम्पूर्ण इन्द्रियों की सामान्यरूपसे वृत्ति होती है याने अपने अपने विषयों में वर्त्तते हैं जो मुख या नासिका के अन्तर्वर्त्तनेवाली वायु है उसका नाम प्राण है उस प्राणवायु के चलने से त्रयोदश इन्द्रियों को अपने अपने स्वरूप का लाभ होता है अर्थात् प्राणों के चलनेसेही पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्च-

कर्म्मेन्द्रिय मन बुद्धि और अहङ्कार अपना अपना काम कर सक्तेहैं प्राणों की क्रिया के विना नहीं करसक्ते हैं जैसे जब पक्षी पिंजरे में चलता फिरता है तब पिंजरा भी हिलता चलता रहता है इसी प्रकार प्राणों की क्रियासे ही शरीररूपी पिंजरे में भी क्रिया होती है अन्यथा नहीं और नासिका के अन्तर्गमन करने से उसका नाम प्राणहै और अन्नादिकों के मल को नीचे लेजाने वाली वायु का नाम अपान है आहारादिकों का समविभाग करनेवाली वायु का नाम समानहै इसकी क्रिया भी इन्द्रियोंकी सामान्यवृत्ति है याने सब इन्द्रियोंमें होतीहै और उदानवायु नाभिदेशसे मस्तक तक विचरती है इसकी क्रिया भी इन्द्रियों की सामान्यवृत्ति है और जो वायु सारे शरीर में व्याप्य करके रहती है उसका नाम व्यान है यह भी इन्द्रियगण की साधारणवृत्ति है इसरीति से ये पांचों वायु इन्द्रियों की साधारणवृत्ति कहीगई हैं ॥ २९ ॥

मूलम् ॥

युगपच्चतुष्टयस्यतुवृत्तिः क्रमशश्चतस्यनिर्दिष्टा ॥ दृष्टेतथाप्यदृष्टे त्रयस्यतत्पूर्विकावृत्तिः॥३०॥

पदच्छेदः ॥

युगपत् चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशः च तस्य निर्दिष्टा दृष्टे तथा अपि अदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विकावृत्तिः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चतुष्टयस्य	= मनबुद्धि अहंकार और एकादश इन्द्रिय की	अदृष्टे	= अदृष्ट विषय में याने प्रत्यक्ष पदार्थों में
वृत्तिः	= प्रवृत्ति	तस्य	= तिन
दृष्टे	= दृष्ट विषयमें अर्थात् प्रत्यक्ष पदार्थोंमें	त्रयस्य	= तीनोंकी याने मन बुद्धि अहंकारकी
युगपत्	= एकही कालमें	वृत्तिः	= प्रवृत्ति
च	= और	तत्पूर्विका	= इन्द्रियपूर्वक
क्रमशः	= क्रमसे भी	भवति	= होती है
+भवति	= होती है	+इति	= इस प्रकार
तथाअपितु	= परन्तु	+तेषाम्	= तिन चारों की प्रवृत्ति
		निर्दिष्टा	= दिखाई गई है॥

भावार्थ ॥

मन बुद्धि अहंकार इनका एक २ इन्द्रियके साथ सम्बन्ध होने से चतुष्टय कहेजाते हैं और इन चारोंकी प्रवृत्ति दृष्ट विषयों में सम कालही होती है जैसे मन बुद्धि अहङ्कार और चक्षु ये चारों मिलकरके ही रूपको देखते हैं यह स्थाणु है ऐसा निश्चय भी करते हैं इसी तरह मन बुद्धि अहङ्कार और जिह्वा मिलकर एकही कालमें रसको ग्रहण करते हैं मन बुद्धि अहङ्कार और घ्राण ये चारों मिलकर एक कालमें ही गन्धको ग्रहण करते हैं इसी प्रकार त्वक् और श्रोत्र मन बुद्धि अहङ्कार साथ मिलकर एककाल

में ही स्पर्श और शब्दको ग्रहण करते हैं ॥ क्रमशश्चतस्यनिर्दि-
ष्टा ॥ और फिर तिन चारोंकी क्रमसे विषयों में प्रवृत्ति होती है
जैसे कोई पुरुष मार्गमें चलता हुआ दूरसे ठूंठको देखता है तब-
उसको ऐसा संशय होताहै कि ॥ स्थाणुर्वा पुरुषोवा ॥ यह स्थाणु
है या पुरुष है जब कुछ आगे जाता है और उसके ऊपर वेल को
लगा हुआ देखता है फिर पक्षी को उसपर बैठा देखता है तब उस
को संशयकी नाशक बुद्धि उत्पन्न होती है और उस को ऐसामा-
लूम होता है कि यह स्थाणु है पश्चात् अहङ्कार निश्चय करताहै
कि स्थाणुही यह है दूसरी और कोई वस्तु नहीं है इस रीति से मन
बुद्धि अहङ्कार की क्रमसे भी प्रवृत्ति होती है ॥ प्रथम चक्षु पदार्थ
को देखता है फिर मन सङ्कल्प करता है बुद्धि जानती है और
अहङ्कार उसको निश्चय करता है जैसे रूपमें क्रमसे प्रवृत्ति चारों
की होती है तैसे शब्दादिकोंमें भी क्रमसे प्रवृत्ति चारोंकी होती
है दृष्टविषय में प्रवृत्ति को दिखाकर अदृष्टविषय में प्रवृत्तिको दि-
खाते हैं अदृष्टपदार्थ विषे अनागतकाल में और अतीतकाल में
अनुमान आगम और स्मृतिद्वारा मन बुद्धि अहङ्कार इन तीनों की
प्रवृत्ति इन्द्रियपूर्वक होती है अर्थात् अदृष्टविषयरूप में मन बुद्धि
अहङ्कारकी प्रवृत्ति चक्षुपूर्वक होती है और स्पर्शत्वक्पूर्वक गन्धमें
घ्राणपूर्वक रसमें रसनापूर्वक शब्द में श्रवणपूर्वक क्रम से प्रवृत्ति
होती है और वर्त्तमानकालमें एकवारगी और क्रम से भी प्रवृत्ति
होती है ॥ ३० ॥ मूलम् ॥

स्वांस्वांप्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम् ॥
पुरुषार्थएवहेतुर्नकेनचित्कार्यतेकरणम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः॥

स्वाम् स्वाम् प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकाम् वृत्ति म् पुरुषार्थः एव हेतुः न केनचित् कार्यते करणम्॥

अन्वयः	पदार्थ
+मनबुद्ध्यहंकाराः	मन बुद्धि और अहंकार
स्वाम्स्वाम्	अपनी अपनी
वृत्तिम्	वृत्ति को
+ या	जो
परस्पराकूतहेतुकाम्	एक दूसरे के अभिप्राय को जानने वाली है
प्रतिपद्यन्ते	प्राप्त होते हैं
पुरुषार्थएवहेतुः	पुरुष का अर्थही मन बुद्धि और अहंकारके प्रवृत्तिका कारण है
केनचित्	और किसी के हेतुकरके
करणम्	मन इन्द्रियां
न कार्यते	नहीं प्रवृत्त होती हैं॥

भावार्थ॥

मन बुद्धि अहङ्कार ये तीनों परस्पर एक दूसरे के अभिप्राय को जानकर अपनी २ प्रवृत्ति को प्राप्त होते हैं॥ दृष्टान्त॥ जैसे युद्धके लिये बहुतसे मनुष्य मिलकर परस्पर सङ्केत करते हैं कि अमुककाल में अमुक वरछी को लेकर अमुकशत्रु के साथ युद्ध करें जब वह काल आताहै तब एक दूसरेके अभिप्रायको जानकर अपने २ शस्त्रको लेकर शत्रुके जीतनेके लिये प्रवृत्त होते हैं तैसेही पुरुषके अर्थको सिद्ध करनेके लिये बुद्धि आदिकों की भी प्रवृत्ति

होती है बुद्धि अहङ्कारके तात्पर्यको जानकर पुरुषके अर्थ के लिये अपने विषयको प्राप्त होती है और अहङ्कारबुद्धिके अभिप्राय को जान पुरुषार्थ करने के लिये अपने विषयमें प्रवृत्त होता है पुरुषके अर्थही गुणोंकी प्रवृत्ति होती है और इसीलिये मन बुद्धि-आदिक पुरुषके अर्थको ही प्रकाशते हैं ॥ प्र० ॥ कैसे बुद्धि आदिक आपही आप प्रवृत्त होजाते हैं वेतो अचेतन हैं उनकी प्रवृत्ति आपसे आप कैसे होसक्ती है ॥ उ० ॥ नकेनचित्कार्यतेकरणम् ॥ करण जो मन बुद्धि आदिक हैं तिनकी प्रवृत्ति न ईश्वर कराता है न पुरुष कराता है किन्तु पुरुष का अर्थही तिनकी प्रवृत्ति कराता है ३१ प्र० ॥ बुद्धि आदिक कितने प्रकारके हैं ॥ उ० ॥

मूलम् ॥

करणंत्रयोदशविधंतदाहरणधारणप्रकाशकरम् ॥
कार्यंचतस्यदशधाहार्य्यंधार्य्यंप्रकाश्यञ्च ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ॥

करणम् त्रयोदशविधम् तत् आहरणधारणप्रकाशकरम् कार्य्यम् च तस्य दशधा हार्य्यम् धार्य्यम् प्रकाश्यम् च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
करणम्	= करण	आहरणधारणप्रकाशकरम्	= आहरणकरताहै धारण करताहै औरप्रकाशकरता है
त्रयोदशविधं	= तेरहप्रकार के हैं		
तत्	= सो करण		

च = और
तस्य = तिसका
कार्य्यम् = कार्य्य
दशधा = दश प्रकार का है
तत् = वह

आहार्यम्, धार्य्यम्, प्रकाश्यम् = आहरण करने योग्य धारण करने योग्य प्रकाशकरने योग्य है ॥

भावार्थ ॥

करणं त्रयोदशविधम् ॥ दश इन्द्रियां और मन बुद्धि अहङ्कार ये तेरह प्रकार के करणहैं अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्म्मेन्द्रिय और मन बुद्धि अहङ्कार ये त्रयोदश करण कहलातेहैं ये सब आहरण धारण और प्रकाश को करते हैं तिनमें आहरण और धारण करना कर्म्मेन्द्रिय का धर्म्म है और प्रकाश करना ज्ञानेन्द्रिय का धर्म्म है आहरण नाम प्राप्त करनेका है सो कर्म्मेन्द्रिय अपने गमनादि व्यापार के विषय को ग्रहण करते हैं और ज्ञानेन्द्रिय विषय को प्रकाश याने प्रकट करते हैं ॥ कार्य्यञ्च तस्यदशधा ॥ तिस त्रयोदश करण का कार्य्य दश प्रकारका है शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये ज्ञानेन्द्रियों करके प्रकाशित होते हैं औ वचन आदान विहरण उत्सर्ग आनन्द ये कर्म्मेन्द्रियों करके आहरण और धारण कियेजाते हैं ॥ ३२ ॥

मूलम् ॥

अन्तःकरणं त्रिविधं दशधाबाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम् ॥ साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरंकरणम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः॥

अन्तःकरणम् त्रिविधम् दशधा बाह्यम् त्रयस्य विषयाख्यम् साम्प्रतकालम् बाह्यम् त्रिकालम् आभ्यन्तरम् करणम्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
त्रिविधम्	तीनप्रकारका	+गृह्णन्ति	ग्रहणकरती हैं
अंतःकरणं	अन्तःकरणहै	च	और
त्रयस्य	तिसअन्तःकरणत्रयका	आभ्यंतरम्	अन्तर
विषयाख्यम्	विषय	करणम्	करण
बाह्यम्	बाह्य	त्रिकालम्	तीनोंकालके
दशधा	दशों इन्द्रियां हैं	बाह्यम्	बाह्यपदार्थ को
+ते	वे	गृह्णन्ति	ग्रहणकरती हैं
सांप्रतकालं	वर्त्तमानकालकेपदार्थोंको		

भावार्थ॥

अन्तःकरणम् त्रिविधम्॥ शरीर के भीतर जो तीन प्रकार के करणहैं वे मन बुद्धि और अहङ्कारहैं और बाह्यकरण दशप्रकार के हैं वही दशो इन्द्रियहैं उनके विषयों के ग्रहण करनेका सङ्कल्प भी ये तीनों करते हैं इस वास्ते उन तीनोंके ही ये दशों बाह्य विषय-कहलाते हैं सो बाह्य दशों इन्द्रियां वर्त्तमानकाल के विषय को ग्रहण करती हैं जैसे श्रोत्र वर्त्तमानही शब्द को सुनता है अती-

त या भविष्यत्को नहीं सुनता है चक्षुर्वर्त्तमानही रूप को देखता है भूत या भविष्यत् को नहीं देखता है त्वगिन्द्रिय वर्त्तमानही स्पर्शको ग्रहण करती है जिह्वा वर्त्तमानही रस को और नासिका वर्त्तमानही गन्ध को ग्रहण करती है भूत या भविष्यत् को नहीं इसीतरह कर्म्मेन्द्रिय भी वर्त्तमानही विषयको ग्रहण करती हैं जैसे वागिन्द्रिय वर्त्तमानही शब्द का उच्चारण करती है अतीत या अनागत का नहीं करती है और दोनों हाथ वर्त्तमानही घटको ग्रहण करते हैं दोनों पाद वर्त्तमानही मार्ग में चलते हैं और पायु और उपस्थ भी वर्त्तमानही उत्सर्ग और आनन्द को करते हैं अतीत या अनागत को नहीं करते हैं इसी कारण वाह्यकरणों को वर्त्तमानकालिक कहाहै और आभ्यन्तर करणको त्रैकालिक कहा है उस को अब दिखाते हैं बुद्धि वर्त्तमान घटको निश्चय करती है और अतीत तथा अनागत घटको भी विषय करती है अहङ्कार वर्त्तमानकाल में अभिमान करता है और अतीत तथा अनागत काल के विषयों में भी अभिमान करता है और मन वर्त्तमान पदार्थ का भी सङ्कल्प करता है और अतीत और अनागत का भी करता है इसी को और दृष्टान्त से भी स्पष्ट करते हैं॥ जैसे नदी का किनारा गिराहुआ देखकर यह ज्ञान होता है कि ऊपर कहीं वृष्टि हुई होगी यह भूतकाल का उदाहरण है ॥ पर्वत में धूमको देखकर वह्निका ज्ञान होता है याने धूम दिखाता है कि वह्नि जरूर है यह वर्त्तमानकाल का उदाहरण है चींटियों की पंक्ति बिलसे निकलते हुये देखकर वृष्टिका ज्ञान होता है याने वृष्टि अवश्य होगी यह उदाहरण भविष्यत्कालका है इसरीति से अन्तःकरण जो मन बुद्धि अहङ्कार हैं वे तीनों कालके विषय को

विषय करते हैं ॥ २३ ॥ कौन इन्द्रियां स्थूल को विषय करती हैं और कौन इन्द्रियां सूक्ष्मको विषय करती हैं इसको अब दिखातेहैं॥

मूलम् ॥

बुद्धीन्द्रियाणितेषांपञ्चविशेषाविशेषविषयाणि॥
वाग्भवतिशब्दविषयाशेषाणितुपञ्चविषयाणि२४

पदच्छेदः ॥

बुद्धीन्द्रियाणि तेषाम् पञ्चविशेषाविशेषविषयाणि वाक् भवति शब्दविषया शेषाणि तु पंचविषयाणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तेषाम्	तिनमें से	शब्दविषया	शब्दको ही विषय करने वाली
पञ्च	पांच	+भवति	है
बुद्धीन्द्रियाणि	ज्ञानेन्द्रियां	तु	और
विशेषाविशेषविषयाणि	स्थूल और सूक्ष्म दोनों विषयोंको विषयकरने वाली हैं	शेषाणि	बाकी चार कर्मेन्द्रियां
वाक्	वाग् इन्द्रिय	पंचविषयाणि	शब्दादि पञ्चस्थूलविषयों को ग्रहणकरनेवालीहैं

भावार्थ॥

ज्ञानेन्द्रियां जो पांचहैं सो सविशेष विषय को ग्रहण करतीं हैं सविशेष नाम स्थूल विषय का है निर्विशेष नाम सूक्ष्म विषय का है तात्पर्य्य यह है कि मनुष्यों के पांच जो ज्ञानेन्द्रियां हैं वे सुख दुःख मोह करके युक्त शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पांच विषयों को विषय करती हैं और देवतों के जो ज्ञानेन्द्रिय हैं सो निर्विशेष विषयों को प्रकाश करती हैं और योगी के जो ज्ञानेन्द्रिय हैं सो सूक्ष्म तन्मात्रा आदिकों को प्रकाश करती हैं और स्थूल विषयों को भी प्रकाश करती हैं और कर्मेन्द्रियों के मध्य में वागिन्द्रिय जो है सो शब्द को ही विषय करती है और जैसे मनुष्य वागिन्द्रिय करके श्लोकों को उच्चारण करते हैं तैसेही देवताभी वागिन्द्रिय करके श्लोकों को उच्चारण करते हैं इस वास्ते देवतों और मनुष्योंका वागिन्द्रिय तुल्यही है और वागिन्द्रियसे भिन्न जो बाकी कर्मेन्द्रियां हैं सो पाणि पाद पायु उपस्थ हैं वे शब्दादिक पञ्च विषयोंवाली वस्तुकोही ग्रहण करती हैं क्योंकि ये आपभी शब्दादिक पांच विषयोंवाली हैं इसी वास्ते पांच विषयोंवाली वस्तु को ग्रहण करती हैं हाथ शब्दादिकोंवालीही वस्तु को ग्रहण करताहै पाद शब्दादिकोंवाली भूमिपर विहार करताहै पायु इन्द्रियभी शब्दादिकों करकेयुक्त मलका त्याग करता है उपस्थ इन्द्रिय पंचशब्दादिकों करके युक्त ही वीर्य से प्रजाकी उत्पत्ति करता है इसी रीतिसे इन्द्रिय स्थूल और सूक्ष्म दोनोंको ग्रहण करते हैं॥ ३४॥

मूलम्॥

सान्तःकरणाबुद्धिः सर्वंविषयमवगाहतेयस्मात्॥

तस्मात्त्रिविधंकरणं द्वारिद्वाराणिशेषाणि ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ॥

सान्तःकरणबुद्धिः सर्वम् विषयम् अवगाहते यस्मात् तस्मात् त्रिविधम् करणम् द्वारि द्वाराणि शेषाणि ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सान्तःकरण	= मन अहंकार सहित	त्रिविधम्	= तीन प्रकार के
बुद्धिः	= बुद्धि	करणम्	= करण
यस्मात्	= जिसकारण	द्वारि	= द्वारपाल हैं
सर्वम्	= सम्पूर्ण	+च	= और
विषयम्	= विषयों को	शेषाणि	= बाकी इन्द्रियां
अवगाहते	= विषय करती है	द्वाराणि	= उनके द्वार हैं ॥
तस्मात्	= तिसकारण		

भावार्थ ॥

सान्तःकरण बुद्धिः जिस कारण अहङ्कार और मनके सहित बुद्धि सम्पूर्ण विषयों को विषय करती है अर्थात् तीनोंकालमें शब्दादिक विषयों को ग्रहण करती है तिसीकारण वे तीनों याने मन बुद्धि और अहङ्कार जो करण हैं सो द्वारपाल हैं और शेष जो इन्द्रिय हैं वे द्वारहैं याने दरवाजेहैं क्योंकि इन्द्रियों के द्वाराहीं वे विषयोंको ग्रहण करते हैं ॥ ३५ ॥

मूलम् ॥

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणागुणविशेषाः ॥

कृत्स्नंपुरुषस्यार्थं प्रकाश्यबुद्धौप्रयच्छन्ति ॥३६॥

पदच्छेदः॥

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणाः गुणविशेषाः कृत्स्नम् पुरुषस्य अर्थम् प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
एते	= ये पांचकर्मेन्द्रिय पांचज्ञानेन्द्रियमन और अहंकार	परस्परविलक्षणाः	= परस्पर विलक्षण हैं
गुणविशेषाः	= तीनोंगुणों करकेपूरित	कृत्स्नम्	= सम्पूर्ण विषयों को
प्रदीपकल्पाः	= दीपकके तुल्य हैं	प्रकाश्य	= प्रकाशकरके
+च	= और	+पुरुषस्य	= पुरुषके
		अर्थम्	= अर्थ
		बुद्धौ	= बुद्धि में
		+तत्	= उनको
		प्रयच्छन्ति	= अर्पण करते हैं॥

भावार्थ॥

ये जो बारह प्रकारकी इन्द्रियां याने पञ्चकर्मेन्द्रिय पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मन और अहंकार तीनों गुणों से पूरित होकर दीपककी तरह विषयों के प्रकाशक हैं और परस्पर विलक्षण भी हैं और भिन्न २ विषयों को विषय करने वाली हैं अर्थात् हरएक इन्द्रिय का विषय पृथक् २ है और चूंकि सत्यादिक गुणोंसे उत्पन्न हुई हैं इसी वास्ते

वे गुणविशेष कही जातीहैं और ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय अहङ्कार और मन अपने २ विषयको पुरुषके भेटके लिये बुद्धि में स्थित करदेते हैं इसीवास्ते बुद्धिमें स्थितहुये सम्पूर्ण विषयोंको याने सुखादिकों को पुरुष प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥

मूलम् ॥

सर्व्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः ॥ सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ॥

सर्व्वम् प्रत्युपभोगम् यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः सा एव च विशिनष्टि पुनः प्रधान पुरुषान्तरम् सूक्ष्मम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यस्मात्	= जिस कारण	+तस्मात्	= इसलिये
पुरुषस्य	= पुरुषकी	चपुनः	= फिर
बुद्धिः	= बुद्धि	साएव	= वही बुद्धि
सर्व्वम्	= सब	प्रधानपुरुषान्तरं	= प्रधानऔरपुरुषके
प्रत्युपभोगं	= भोगकी सामग्रीको	सूक्ष्मम्	= सूक्ष्मभेदको
साधयति	= सिद्ध करती है	विशिनष्टि	= विभाग करती है ॥

भावार्थ ॥

तीनों काल में सम्पूर्ण देवताओं और मनुष्यों और तिर्य्यगा-

दिकों के प्रति उपभोग को ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रिय द्वारा सहित अहङ्कार और मनके जो बुद्धि सिद्ध करती है वही बुद्धि प्रधान और पुरुष के विभाग को भी सिद्ध करती है प्रकृति तो सत्त्व रज तम तीनों गुणोंकी साम्यावस्था है अर्थात् तीनों गुणों की साम्यावस्था का नामही प्रकृति है यह बुद्धि है यह अहङ्कार है ये पञ्चतन्मात्रा हैं ये एकादश इन्द्रिय हैं ये पांच महाभूत हैं और इन सब से अतिरिक्त यह पुरुष है इस प्रकार के विभाग का बोध बुद्धि करती है और यही बोध मोक्ष का साधन है ॥ ३७ ॥

कारणों के विभाग को दिखादिया अब विशेष और अविशेष विषयों के विभाग को दिखाते हैं ॥

मूलम् ॥

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्योभूतानिपञ्चपञ्चभ्यः॥
एतेस्मृताविशेषाःशान्ताघोराश्चमूढाश्च ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ॥

तन्मात्राणि अविशेषाः तेभ्यः भूतानि पञ्च पञ्चभ्यः एते स्मृताः विशेषाः शान्ताः घोराः च मूढाः च ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तन्मात्राणि	= पञ्चतन्मात्रा	भूतानि	= महाभूत
अविशेषाः	= सूक्ष्म हैं	+भवन्ति	= उत्पन्न होते हैं
तेभ्यः	= तिन	एते	= ये पांच महाभूत
पञ्चभ्यः	= पञ्चतन्मात्रासे	विशेषाः	= स्थूल
पञ्च	= पांच		

शान्ताः = सुखदायक	मूढाः = मोहदायक
घोराः = दुःखदायक	स्मृताः = कहेगये हैं ॥

भावार्थ ॥

अहङ्कारसे जो पञ्चतन्मात्रा उत्पन्न होती हैं याने शब्दतन्मात्रा स्पर्शतन्मात्रा रूपतन्मात्रा रसतन्मात्रा गन्धतन्मात्रा वे पांच सूक्ष्म कहेजाते हैं देवतों को ये पांचतन्मात्रा सुखदायक विषय हैं दुःख और मोह से रहित हैं तिन पञ्चतन्मात्रा से पृथिवी आदि पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं ये पांच महाभूत विशेष याने स्थूल हैं गन्धतन्मात्रा से पृथिवी रसतन्मात्रा से जल रूपतन्मात्रा से तेज स्पर्शतन्मात्रा से वायु शब्दतन्मात्रा से आकाश इस प्रकार पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं ॥ ये जो विशेष याने स्थूल विषयहैं उन करके मनुष्य कभी शान्तसुख को कभी घोरदुःख को और कभी मोह को प्राप्त होताहै जैसे आकाश उसको सुखदायक होताहै जो संकुचित गृह से बाहर निकलता है अर्थात् जो तंगमकान के भीतर संकोच को प्राप्त होता है उसको बाहर निकलने पर आकाश सुख देताहै वही आकाश शीत उष्ण वात वर्षा धूप आदिकों करके युक्तहुआ हुआ दुःखदायक होजाता है फिर वही आकाश उस को जो रास्ता भूल गया है दिशाके भ्रमसे मूढ़ता का हेतु होता है इसी प्रकार जो गर्म्मी करके पीड़ित होताहै उसको वायु सुखदायक होती है और शीत करके जो पीड़ित होरहा है उस को दुःखदायी होती है और धूल से मिलीहुई वही वायु पुरुष को मूढ़ याने परेशान कर देती है इसी प्रकार तेज जल पृथिवी में भी घटा लेना ॥ ३८ ॥

मूलम् ॥

सूक्ष्मामातापितृजाः सहप्रभूतैस्त्रिधाविशेषाःस्युः॥
सूक्ष्मास्तेषां नियताः मातापितृजानिवर्त्तन्ते ३९॥

पदच्छेदः ॥

सूक्ष्माः मातापितृजाः सहप्रभूतैः त्रिधा विशेषाः स्युः सूक्ष्माः तेषाम् नियताः मातापितृजाः निवर्त्तन्ते ॥

अन्वयः	पदार्थ
सूक्ष्माः	= सूक्ष्मशरीरें
च	= और
मातापितृजाः	= माता पिताके वीर्य से उत्पन्न भये स्थूल शरीरें
सहप्रभूतैः	= सहित पांच महाभूतोंके
त्रिधा	= तीनप्रकारके
विशेषाः	= विशेष याने स्थूलशरीरें
स्युः	= हैं
तेषाम्	= तिनमें से
सूक्ष्माः	= सूक्ष्मशरीरें
नियताः	= नित्य हैं
च	= और
मातापितृजाः	= मातापिता से जन्य स्थूल शरीरें
निवर्तन्ते	= नाशकोप्राप्त होते हैं ॥

भावार्थ ॥

सूक्ष्मतन्मात्रासे जो बना होवै उसका नाम सूक्ष्मा है सूक्ष्मशरीर महदादिकों करके युक्तहै उसीका नाम लिंग शरीर भी है ज्ञा-

न की प्राप्ति पर्यन्त वह नित्य है क्योंकि जबतक ज्ञान नहीं होता है तबतक वह लिंग शरीर जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्त होताहै और माता पितासे जन्य जो स्थूलशरीर है उसका वर्द्धक भी लिंग ही शरीर है क्योंकि जिसकाल में माता पिता का संयोग होता है तिस कालमें लिंग शरीर पिताके वीर्य द्वारा माताके उदरमें प्रवेश करताहै और माताके रक्त और पिताके वीर्य मिलनेसे जो स्थूलशरीर बनता है वह शरीर सूक्ष्मके सम्बन्धसे ही बढ़ता है और माता करके भक्षण कियेहुये जो नाना प्रकारके अन्न तिनके रसों करके स्थूल शरीरवृद्धि को प्राप्त होताहै और पृष्ठ उदर जंघा कटि छाती शिर ये षट्कौशिक हैं अर्थात् इनका नाम षट्कौशिक है और पांचों भूतों के कार्य हैं माताके रक्तसे रोमरक्त मांस ये तीन उत्पन्न होते हैं और पिताके वीर्यसे नाड़ी अस्थि मज्जा ये तीन उत्पन्न होतेहैं इन छवोंकरके स्थूल शरीर बनताहै आकाश इसको गर्भ में बढ़ने के लिये अवकाश देताहै वायु बढ़ाती है तेजपाक करता है जल संग्रह करताहै पृथिवी धारण करती है इस रीतिसे सम्पूर्ण अवयवों करके युक्त होकर स्थूल शरीर फिर माताके शरीरसे बाहर निकलता है सूक्ष्म शरीर एक विशेषहै और स्थूलशरीर दूसरा विशेषहै और पर्वत वृक्षादि तीसरा विशेष है ये तीन विशेष हैं अर्थात् इनका नाम विशेष है अब इन तीनोंमें से नित्य अनित्यको बताते हैं॥ सूक्ष्मास्तेषांनियताः॥ सूक्ष्म शरीर नित्यहै वही कर्मोंके वश्य से पशु मृग पक्षी सर्प और स्थावरादि योनियोंमें जाताहै और धर्मके वशसे चन्द्रलोकादिकों में गमन करताहै इसवास्ते लिंग शरीरही जन्ममरणरूपी संसारको प्राप्त होता है जब आत्मज्ञान उत्पन्नहो-ताहै तब विद्वान् सूक्ष्म शरीरको भी त्याग करके मोक्षको प्राप्तहो-

ताहै इसीवास्ते सूक्ष्म शरीरको नित्य कहाहै और माता पिता से जन्य जो स्थूल शरीरहै सो प्राणोंके वियोगकालमें ही नष्ट होजा ता है इसीसे उसको अनित्य कहा है और पर्वत स्थावरादिक भी काल पाकर नष्ट होजाते हैं वहभी अनित्य हैं ॥ ३९ ॥

मूलम् ॥

पूर्वोत्पन्नमसक्तंनियतंमहदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् ॥
संसरतिनिरुपभोगं भावैरधिवासितंलिंगम् ४० ॥

पदच्छेदः ॥

पूर्वोत्पन्नम् असक्तम् नियतम् महदादिसूक्ष्मपर्यंतम् संसरति निरुपभोगम् भावैः अधिवासितम् लिंगम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
लिङ्गम् =	सूक्ष्मशरीर	भावैः =	जन्मान्तरों के संस्कारोंकी वासनाकरके
पूर्वोत्पन्नम् =	सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ है	अधिवासितं =	भराहुआ है
असक्तम् =	सम्बन्ध रहित है	निरुपभोगम् =	भोगरहित हुआ
महदादिसूक्ष्मपर्यंतम् =	महत्तत्त्वसे लेकर पञ्च तन्मात्रा तक है	संसरति =	गमन करतारहता है याने जन्म मरण को प्राप्त होता रहता है ॥
नियतम् =	नित्यहै या वत्पर्यन्त ज्ञान नहीं होता है		

भावार्थ ॥

प्रधानादि सर्ग से प्रथम याने स्थूललोककी उत्पत्ति के पहले यह सूक्ष्मशरीर उत्पन्न हुआथा और किसी मनुष्य तिर्य्यगादि-योनियों के साथ इसका सम्बन्ध नहीं था और कहीं भी इसकी रुकावट न थी यह सर्व्वत्र गमन करता था॥ तच्च महदादि सूक्ष्म-पर्य्यन्तम्॥ महत्तत्त्व से लेकर पञ्चतन्मात्रा तक याने अहङ्कार महत्तत्त्व ५ कर्म्मेन्द्रिय ५ पांच ज्ञानेन्द्रिय १ मन॥ सूक्ष्मतत्त्व हैं और उन करके बना जो सूक्ष्मशरीर है सो भोगरहित हुआहुआ तीनों लोकों में गमन करता है और जब यह लिंगशरीर माता पितासे जन्य स्थूलशरीर के साथ वृद्धिको प्राप्त होकर और क्रिया धर्म्म को ग्रहण करके भोगों के भोगने में समर्थ होता है और अनेक जन्मों के भोगों की वासना करके भराहुआ प्रलयकाल में महत्तत्त्व से लेकर सूक्ष्मकरणों के सहित प्रधान में लय होता है तब प्रकृति में बन्धन करके बन्धायमान हुआ हुआ गमनादिक क्रिया करने में असमर्थ होताहै और फिर सृष्टिकाल में वही लिंग-शरीर जन्ममरणरूपी संसार को प्राप्त होता है॥ ४०॥

प्र०॥ किस प्रयोजन के लिये त्रयोदशविध करण करके युक्त हुआ हुआ लिंगशरीर गमनागमन क्रिया को करता है॥ उ०॥

मूलम्॥

चित्रंयथाश्रयमृतेस्थावरादिभ्योयथाविनाछाया॥
तद्वद्विना विशेषैर्नतिष्ठति निराश्रयं लिंगम्॥ ४१॥

पदच्छेदः॥

चित्रम् यथा आश्रयम् ऋते स्थावरादिभ्यः

यथा विना छाया तद्वत् विना विशेषैः न तिष्ठति निराश्रयम् लिंगम्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	= जैसे	छाया	= छाया
चित्रम्	= चित्र	+न तिष्ठति	= नहीं रहती है
ऋते	= विना	तद्वत्	= तैसेही
आश्रयम्	= आश्रय के	निराश्रयम्	= निराश्रय
+न तिष्ठति	= नहींरहता है	लिंगम्	= लिंगशरीर भी
+च	= और		
यथा	= जैसे		
विना	= विना	विनाविशेषैः	= विनातन्मात्राकेयास्थूलशरीरके
स्थावरादिभ्यः	= स्थाणुआदिकों के	नतिष्ठति	= नहींरहता है॥

भावार्थ॥

जैसे दीवारके विना चित्र स्थिर नहीं रहसक्ता है और वृक्षआदिके विना छाया नहीं रहसक्ती है शीतलता विना जलके नहीं रहसक्ती है उष्णता विना अग्नि के नहीं रहसक्ती है वायुके विना स्पर्श नहीं रहसक्ता है आकाश विना अवकाश के नहीं रहसक्ता है पृथिवी के विना गन्ध नहीं रहसक्ती है तैसे विना विशेषों के लिंगशरीर नहीं रहसक्ता है और स्थूलशरीर भी विना सूक्ष्मशरीर के नहीं रहसक्ता है और सूक्ष्मशरीर एक स्थूलदेहको त्यागके दूसरे स्थूलदेह को ग्रहण करताहै निरालम्ब नहीं रहसक्ता है॥ ४१॥

मूलम्॥

पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसंगेन॥

प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद्व्यवतिष्ठतेलिंगम्॥४२॥

पदच्छेदः॥

पुरुषार्थहेतुकम् इदम् निमित्तनैमित्तिकप्रसंगेन प्रकृतेः विभुत्वयोगात् नटवत् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रकृतेः	= प्रकृति के	इदम्	= यह
निमित्तनैमित्तिक प्रसंगेन	= निमित्तधर्मादि नैमित्तिक धर्मादि के फल स्थूलशरीरादि के सम्बन्ध से	लिङ्गम्	= लिंगशरीर
+च तस्याः	= और उसके	नटवत्	= नटकी तरह
विभुत्व-योगात्	= विभुत्वपने के संयोगसे याने उसकीआज्ञा से	पुरुपार्थ हेतुकम्	= पुरुपके अर्थ
		व्यवतिष्ठते	= व्यवहार करता है॥

भावार्थ॥

पुरुपके लिये अपनी कर्तव्यताको जानकर प्रकृति प्रवृत्त होती है सो प्रकृतिकी कर्तव्यता दोप्रकारकी है एकतो शब्दादि विपयों का ज्ञान दूसरा गुणोंसे पृथक् पुरुप का ज्ञान अर्थात् ब्रह्मलोक पर्यंत जितने भोग हैं उन भोगोंको पुरुपके लिये प्राप्त करना और गुणों से पृथक् पुरुपको ज्ञान कराकर मोक्ष की प्राप्तिकरनी प्रधान का काम है इसीवास्ते मूलमें कहाहै कि॥ पुरुपार्थहेतुकमिदंप्रवर्त्तते॥ पुरुप का प्रयोजनही है कारण जिसमें उसीका नाम है॥ पुरुपार्थहेतुकम्॥ उसीके लिये सूक्ष्मशरीर की प्रवृत्ति होती है सो प्र-

वृत्ति निमित्तनैमित्तिक प्रसंग करके होती है निमित्तधर्मादि नैमित्तिक ऊर्ध्व गमनादि इनके प्रसंग करके प्रवृत्ति होती है सो इनको आगे दिखावैंगे और प्रकृतिके विभुत्वपने के सम्बन्धसे भी लिंगशरीरकी प्रवृत्ति होती है जैसे राजा अपने राज्यमें विभुहै इसीवास्ते जो वह चाहताहै वही करताहै तैसेही प्रकृति भी सर्वत्र विभु होने से और पूर्वोक्त निमित्त नैमित्तिक प्रसंगसे पृथक् पृथक् देहों के धारण करने में लिंग की व्यवस्था को करती है और पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्चकर्मेन्द्रिय मन बुद्धि अहङ्कार इन तेरह करणों करके युक्त जो लिंगशरी है वही नटकी तरह मनुष्य देवतिर्यक्योनियों में व्यवहारको करताहै जैसे नटुवा परदेके भीतर प्रवेश करके कभी देवता बनकर बाहर निकलआता है और कभी मनुष्य होकर बाहर निकलआता है विलक्षणरूपों को धारण किया करता है इसी प्रकार लिंगशरीर भी धर्मादि निमित्तों करके गर्भ के भीतर प्रवेशकर कभी स्त्री कभी पुरुष कभी पशु आदिरूपों को धारण करता है ॥ ४२ ॥ पूर्वकारिका में जो कहा है कि संस्कारों करके अधिवासित हुआ हुआ लिंगशरीर जन्ममरणरूपी संसारको प्राप्त होता है उसीको अब दिखाते हैं ॥

मूलम् ॥

सांसिद्धिकाश्चभावाः प्रकृतिका वैकृतिकाश्चधर्माद्याः ॥ दृष्टाःकरणाश्रयिणःकार्याश्रयिणश्चकललाद्याः ॥ ४३ ॥

पदच्छेदः ॥

सांसिद्धिकाः च भावाः प्राकृतिकाः वैकृतिकाः

च धर्माद्याः दृष्टाः करणाश्रयिणः कार्याश्रयिणः च कललाद्याः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
धर्माद्याः	= धर्मादिक	करणाश्रयिणः	= बुद्धि के आश्रित हैं
भावाः	= भाव	च	= और
सांसिद्धिकाः	= सांसिद्धिक	कललाद्याः	= कललादिक भाव
प्राकृतिकाः	= प्राकृतिक	कार्याश्रयिणः	= कार्यके आश्रित हैं ॥
च	= और		
वैकृतिकाः	= वैकृतिक		
दृष्टाः	= देखेगये हैं		
+ते	= वे		

भावार्थ ॥

भावास्त्रिविधाश्च ॥ तीन प्रकारके भाव याने पदार्थ हैं ॥ एक तो सांसिद्धिक है दूसरा प्राकृतिक है तीसरा वैकृतिक है ॥ धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य इनका नाम भाव है कपिल भगवान् जोकि सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्माजी के पुत्र हुए हैं उनके जन्मकाल में ही धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य चारों एक साथही उत्पन्न हुए हैं इसवास्ते वे सांसिद्धिक कहेजाते हैं और उपायों और अनुष्ठानों करके जो धर्म्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य उत्पन्न हों उनका नाम प्राकृतहै सो इन गुणों करके युक्त ब्रह्माजी के सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार चार पुत्र हुये हैं उनको षोड़श वर्ष की आयुमेंही साधनों करके धर्म्मादि भाव उत्पन्न हुये हैं इस वास्ते वे प्राकृत कहेजाते हैं और आचार्य्य की मूर्त्तिको निमित्त करके अस्मदादिकों को जो ज्ञानादि उत्पन्न होते हैं याने प्रथम ज्ञाने

उत्पन्न होता है फिर ज्ञान से वैराग्य होता है वैराग्य से धर्म होता है धर्म्म से ऐश्वर्य्य होता है वे वैकृत कहेजाते हैं इन भावों करके अधिवासित हुआ हुआ अर्थात् इन भावोंकी वासना करके भरा-हुआ लिंगशरीर जन्ममरणरूपी संसार को प्राप्त होता है और ये जो चार ज्ञानादिभाव ऊपर कहे हैं सो सात्त्विक हैं याने सत्त्व-गुण के कार्य्य हैं और इनसे विपरीत अधर्म्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य्य ये चार भाव तामस हैं याने तमोगुण के कार्य्य हैं सब मिलकर आठ भावहैं और करणाश्रयहैं अर्थात् करण जो बुद्धि तिसके आश्रित रहते हैं इसी वास्ते बुद्धिका लक्षण ॥ अध्यवसा-योबुद्धिर्धर्म्मोज्ञानमिति ॥ किया है और जो देहहै तिसका आश्रय कललादिक हैं जो कि माता पिताके वीर्य्य से उत्पन्न होते हैं तैसेही कौमार यौवन वृद्धत्वादि जो भावहैं वे अन्नके रससे उत्पन्न होतेहैं इसी वास्ते उनको कार्य के आश्रित कहते हैं ॥ ४३ ॥

अब निमित्त नैमित्तिक को दिखाते हैं ॥

मूलम् ॥

धर्म्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद्भवत्यधर्म्मे-ण ॥ ज्ञानेन चापवर्गोविपर्य्ययादिष्यतेवन्धः ४४

पदच्छेदः ॥

धर्म्मेण गमनम् ऊर्ध्वम् गमनम् अधस्तात् भवति अधर्म्मेण ज्ञानेन च अपवर्गः विपर्य्यया-त् इष्यते वन्धः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
धर्म्मेण	= धर्म्म करके	ऊर्ध्वम्	= ऊपरके लोकोंको

गमनम् = गमन	च = और
भवति = होता है	ज्ञानेन = ज्ञानकरके
अधर्म्मेण = अधर्म्म कर के	अपवर्गः = मोक्ष
	+च = और
अधस्तात् = नीचे के लोकोंको	विपर्ययात् = अज्ञानकरके
	बन्धः = बन्ध
गमनम् = गमन	इष्यते = कथन किया गया है॥
+भवति = होता है	

भावार्थ॥

धर्म्मेणगमनमूर्ध्वम्॥ धर्म्मकरके ऊपरके आठ लोकों में गमन होता है वे आठ लोक ये हैं ब्रह्मलोक, प्राजापत्यलोक, चन्द्रलोक, इन्द्रलोक, गान्धर्व्वलोक, यक्षलोक, राक्षसलोक, पिशाचलोक इन लोकों में सूक्ष्मशरीर गमन करता है और वही लिंग शरीर अधर्म्म करके पशु पक्षी सर्प्प स्थावरादि योनियों में गमन करता है और आत्मज्ञान करके मोक्ष होता है॥ सो पचीस तत्त्वोंका ज्ञानही आत्मज्ञान है और विपर्य्यय याने अज्ञान करके इसको बन्ध होता है इसी बन्धको नैमित्तिक प्राकृतिक वैकारिक या दाक्षिणिक बन्ध कहते हैं और प्राकृतिक बन्ध करके या वैकारिक बन्ध करके या दाक्षिणिक बन्ध करके जो बन्धायमान होता है वह मुक्त नहीं होता है और जो आत्मज्ञान के लिये प्रकृति की उपासना करता है वह सौहजार वर्ष जगत् में भोगों को भोगता है और जो प्रकृति के विकार इन्द्रिय अहङ्कार बुद्धि इनकी उपासना करता है वह दश मन्वन्तर भोगों को भोगता है इसी का नाम वैकृतिक बन्ध है और जो ज्ञानके लिये इष्टा पूर्त्त कर्म्मों

कोही करता रहता है वह सदैव संसारचक्र में भ्रमता रहताहै इसी का नाम दाक्षिणिक बन्ध है इन तीन प्रकार के बन्धों में जो फँसा है वह कदापि मुक्त नहीं होताहै ॥ ४४ ॥

मूलम् ॥

वैराग्यात्प्रकृतिलयःसंसारोभवतिराजसाद्रागात् ॥ ऐश्वर्यादविघातोविपर्ययात्तद्विपर्यासः ४५ ॥

पदच्छेदः ॥

वैराग्यात् प्रकृतिलयः संसारः भवति राजसात् रागात् ऐश्वर्यात् अविघातः विपर्ययात् तत् विपर्यासः ॥

अन्वयः	पदार्थः	अन्वयः	पदार्थ
वैराग्यात्	= वैराग्यसे	ऐश्वर्यात्	= अणिमादिक ऐश्वर्य से
प्रकृतिलयः	= प्रकृतिमें लय	अविघातः	= रुकावट नहीं होती है
भवति	= होता है	तत्	= तिसके
राजसात्	= रजोगुणी	विपर्ययात्	= विपरीत से
रागात्	= राग से	विपर्यासः	= रुकावट
संसारः	= संसार	भवति	= होती है ॥
भवति	= होता है		

भावार्थ ॥

अगर किसी पुरुषको वैराग्य तो है परन्तु तत्त्वज्ञान नहीं है तो वह वैराग्य अज्ञानपूर्वक कहाजाता है वह ऐसे वैराग्यसे मोक्ष को नहीं प्राप्त होताहै किंतु प्रधान बुद्धि अहंकार पञ्चतन्मात्रा इन आठ प्रकृतियों में ही मरकरके लय होता है अर्थात् फिर संसारको

ही प्राप्त होता है और जो रजोगुणी रागहै कि मैं यज्ञ करूं दक्षिणाको देऊं जिसके करने से इस लोक में और परलोक में अपूर्व मनुष्य के सुखको और देवतों के सुखको अनुभव करूं इस प्रकार के राजसराग से भी पुनः पुनः जन्ममरणरूपी संसारकोही प्राप्त होता है और जो आठ प्रकार के ऐश्वर्य्य अणिमादिक हैं उन करके इस के गति की रुकावट कहीं भी नहीं होती है अर्थात् ब्रह्मलोकादि स्थानों में भी इसके ऐश्वर्य्य का नाश नहीं होता है और अनैश्वर्य्य का नाश होता है अर्थात् सर्व्वत्र ही इस पुरुषकी गति रुक जाती है निमित्त के सहित नैमित्तिक सोलह प्रकारका कथन कियागया अब उसके स्वरूपको कहते हैं॥४५॥

मूलम्॥

एषःप्रत्ययसर्गोविपर्य्ययाशक्तितुष्टिसिद्धाख्यः॥
गुणवैषम्यविमर्द्दात्तस्यच भेदास्तु पञ्चाशत्॥४६॥

पदच्छेदः॥

एषः प्रत्ययसर्गः विपर्य्ययाशक्तितुष्टिसिद्धाख्यः गुणवैषम्यविमर्द्दात् तस्य च भेदाः तु पञ्चाशत् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
विपर्य्ययाशक्तितुष्टिसिद्धाख्यः	= विपर्ययअशक्तितुष्टि और सिद्धि	तस्य	= तिसबुद्धिकी सृष्टिके
		भेदाः	= भेद
एषः	= यह	गुणवैषम्यविमर्द्दात्	= गुणोंकी न्यूनता और अधिकताकेकारण
प्रत्ययसर्गः	= बुद्धिकीसृष्टि है		
च	= और	पञ्चाशत्	= पचास हैं॥

भावार्थ॥

धर्म्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्य अधर्म्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य्य ये निमित्तिक और नैमित्तिक फलके भेदसे सोलह प्रकारके हैं इन्हीं का नाम प्रत्ययसर्ग्ग भी है प्रत्यय नाम बुद्धिका है तिस बुद्धिकी यह सृष्टि है अर्थात् बुद्धिसे ही इनकी उत्पत्ति होती है॥ इसी वास्ते इनको प्रत्ययसर्ग्ग कहते हैं सो प्रत्ययसर्ग्ग चार प्रकारका है याने विपर्य्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धि तिनमें विपर्य्यय नाम संशय काहै उसी को अज्ञान भी कहते हैं जैसे किसी ने मन्द अन्धकार में स्थाणु को देखा उसको संशय हुआ कि यह स्थाणु है या पुरुषहै इस संशय युक्त ज्ञान का नाम विपर्य्ययज्ञान है और तिसी स्थाणु को पुनः देखकरके पूर्व्वोक्त संशय के छेदन को समर्थ न होना इसका नाम अशक्ति है और फिर तिसी स्थाणु के जानने के लिये और संशय के छेदन के वास्ते यत्न से रहित हो जाना ऐसा ख्याल करके हमको इससे क्या प्रयोजन है और फिर ऐसा जान करके सन्तोष कर लेना इसका नाम तुष्टि है और जब आनन्दित होकर तिसी स्थाणु पर आरूढ़ हुई बल्ली को या पक्षी को देखता है और निश्चय करताहै कि यह बल्ली है या पक्षी है इसका नाम सिद्धि है॥ इसी रीतिसे चार प्रकार के प्रत्ययसर्ग्ग के गुणोंकी न्यूनता अधिकताके कारण पचास भेद होतेहैं अर्थात् सत्त्व रज तम गुणोंकी न्यूनता अधिकता से प्रत्ययसर्ग्ग के पचास भेद होजातेहैं जब सत्त्वगुण उत्कट होताहै तब रज तम दोनों उदासीन होजातेहैं और जब रजोगुण उत्कट होताहै तब सत्त्व तम उदासीन होते हैं जब तमोगुण उत्कट होता है तब सत्त्व रज उदासीन होजातेहैं॥ २६॥

मूलम् ॥

पञ्चविपर्ययभेदाभवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्
अष्टाविंशतिभेदास्तुष्टिर्नवधाऽष्टधासिद्धिः ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः ॥

पञ्च विपर्य्ययभेदाः भवन्ति अशक्तिः च करण वैकल्यात् अष्टाविंशतिभेदाः तुष्टिः नवधा अष्टधा सिद्धिः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
विपर्य्यय भेदाः	= विपर्य्यय के भेद	अष्टाविंश तिभेदाः	= अट्ठाईसप्रकार की है
पञ्च	= पांच	तुष्टिः	= तुष्टि
भवन्ति	= होते हैं	नवधा	= नवप्रकारकी है
च	= और	सिद्धिः	= सिद्धि
अशक्तिः	= अशक्ति	अष्टधा	= आठ प्रकार की है ॥
करणवैकल्यात्	= इन्द्रियों की विकलतासे		

भावार्थ ॥

तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, ये पांच विपर्य्यय के भेद हैं इनके अवांतर जो और भेदहैं उनको आगें कहेंगे ॥ और इन्द्रियों के दोषके कारण अशक्तिके अट्ठाईस भेदहैं उनको भी आगे कहेंगे तुष्टिके जो नव भेद हैं वे राजस ज्ञान हैं और सिद्धिके जो आठ भेदहैं वे सात्विक ज्ञानहैं इन सब का निरूपण क्रमसे आगे करेंगे ॥ ४७ ॥

मूलम्॥

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्यचदशविधोमहामोहः॥तामिस्रोऽष्टदशधातथाभवत्यन्धतामिस्रः४८

पदच्छेदः॥

भेदः तमसः अष्टविधः मोहस्य च दशविधः महामोहः तामिस्रः अष्टदशधा तथा भवति अन्ध तामिस्रः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तमसः	तम के	तामिस्रः	तामिस्र
च	और	तथा	और
मोहस्य	मोहके	अन्धतामिस्रः	अन्धतामिस्र
भेदः	भेद	अष्टदशधा	अठारह प्रकार के
अष्टविधः	आठ प्रकार के हैं	भवति	होते हैं॥
महामोहः	महामोह		
दशविधः	दशप्रकारकाहै		

भावार्थ॥

तमके आठ भेदहैं तम नाम अज्ञान का है॥ प्रधान बुद्धि अहङ्कार पञ्च तन्मात्रा ये आठ तमके भेदहैं अज्ञान करके मुक्त पुरुष इन्हीं आठ प्रकृतियोंमें लीन हुआ २ अपने को मुक्त मानता है और कहताहै कि मैं मुक्तहूं परन्तु वह मुक्त नहीं होता है और जो आठ अणिमा आदिक सिद्धियां हैं वे मोहके आठ भेद हैं इन्द्र आदि देवता भी आठ अणिमादिक सिद्धियोंको प्राप्त होकर तिन

के संगसे मोक्षको प्राप्त नहीं होते हैं किन्तु ऐश्वर्य के नाश होने पर फिर जन्ममरणरूपी संसारको ही प्राप्त होते हैं और जो शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध पांच विषयहैं वे देवतों को सुखदायकहैं और वेही मनुष्यों को भी सुखदायकहैं परन्तु इतना इनमें भेद है कि देवतों के विषय सूक्ष्महैं और मनुष्योंके स्थूलहैं इन दशोंप्रकारके विषयों का नाम महामोह है तामिस्र अठारह प्रकार का है उन में आठ अणिमादिक ऐश्वर्य हैं और पांच दृष्ट विषय हैं और पांच अनुश्रविक विषयहैं याने मनुष्यके पांच ज्ञानेन्द्रियके विषय और पांच देवतोंके ज्ञानेन्द्रियके विषय ये दोनों दिव्य अदिव्य भेद से दश विषयहैं सब मिलकर अठारह हुये इनकी संपदा करके जब पुरुष युक्त होताहै तब बड़े हर्षको प्राप्त होताहै और इनके वियोग से खेदको प्राप्त होताहै और पूर्वोक्त जो आठ अणिमादिक ऐश्वर्य और दश विषय कहे हैं सोई अठारह अन्धतामिस्र के भी भेदहैं परन्तु विषयोंकी प्राप्तिहुये पर जब पुरुष मरताहै या आठ प्रकारके ऐश्वर्य से भ्रष्ट होताहै तब उसको महादुःख होताहै उसीका नाम अन्धतामिस्र है इस प्रकार तमके ८ मोहके ८ महामोहके १० तामिस्रके १८ अन्धतामिस्रके भी १८ सब मिलकर ६२ भेद पांच प्रकार के विपर्ययके हुये ॥ ४८ ॥

अब अशक्तिके भेदों का निरूपण करते हैं ॥

मूलम् ॥

एकादशेन्द्रियवधाःसहबुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा॥
सप्तदशवधाबुद्धेर्विपर्ययातुष्टिसिद्धीनाम्॥ ४९ ॥

पदच्छेदः ॥

एकादश इन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैः अशक्तिः उद्दिष्टा

सप्तदशवधाः बुद्धेः विपर्ययात् तुष्टिसिद्धीनाम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
बुद्धिवधैः सह	= बुद्धिके वध के सहित	बुद्धेः	= बुद्धिका वध
एकादश	= ग्यारह प्रकार का	सप्तदशधाः	= सत्रह प्रकार का है
इन्द्रिय वधाः	= इन्द्रियवधहै	+द्वौ मिलित्वा	= दोनों मिलकर
+च	= और	+अष्टाविंशतिधा	= अट्ठाईसप्रकार की
तुष्टिसिद्धीनाम्	= तुष्टि और सिद्धि के	अशक्तिः	= अशक्ति
विपर्ययात्	= विपर्यय से	उद्दिष्टा	= कही गई है

भावार्थ ॥

इन्द्रियों की विकलतासे अशक्ति के जो अट्ठाईस भेद हैं उसी को अब दिखाते हैं ग्यारह जो इन्द्रियों के वध हैं वे ये हैं श्रोत्र इन्द्रिय का वध बहरा होना चक्षु इन्द्रियका वध अन्धा होना नासिका इन्द्रिय का वध गन्धकी प्रतीति का अभाव होना रसना इन्द्रिय का वध रसके ज्ञान का अभाव होना त्वगिन्द्रिय का वध स्पर्शज्ञान का अभाव होना वागिन्द्रिय का वध गूंगा होना पाणिइन्द्रिय का वध टुंडा होना पादेन्द्रिय का वध मुंडा होना गुदाइन्द्रिय का वध उदावर्त्त रोग होना लिंग इन्द्रिय का वध नपुंसक होना मन इन्द्रियका वध मन्दमति होना ये सब एकादश इन्द्रियों के वधहैं और बुद्धिके भेद सत्रहहैं उनमें से नव प्रकार की तुष्टि है और आठ प्रकार की सिद्धि है इनको उलटा करने से नव और आठ

दोनों मिलाकर सत्रह बुद्धिके वध हैं और इनके साथ पूर्वोक्त ग्यारह वध इन्द्रियों के मिलाने से सव अट्ठाईस भेद अशक्तिके होते हैं ॥ ४९ ॥

अव नव प्रकार की तुष्टिको दिखातेहैं ॥

मूलम् ॥

आध्यात्मिकाश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः ॥ बाह्याविषयोपरमात्पञ्च नवतुष्टयोऽभिहिताः ॥ ५० ॥

पदच्छेदः ॥

आध्यात्मिकाः चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः बाह्याः विषयोपरमात् पञ्च नव तुष्टयः अभिहिताः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रकृत्युपादानकालभागाख्याः	= प्रकृति उपादानकालभाग्यनामक	विषयोपरमात्	= विषयोंसे उपराम होने के कारण
आध्यात्मिकाः	= आध्यात्मिक याने आभ्यंतरतुष्टि	पंचबाह्याः	= पांच बाह्य तुष्टि हैं
चतस्रः	= चार प्रकार की है	द्वेमिलित्वा	= दोनोंमिलाकर
		नवतुष्टयः	= नव प्रकारकी तुष्टि
		अभिहिताः	= कथनकीगईहै

भावार्थ ॥

अध्यात्मनिभवाआध्यात्मिकाः ॥ पुरुष के अन्तःकरण में जो होनेवाली तुष्टि है उसका नाम आध्यात्मिकतुष्टि है सो आध्यात्मिकतुष्टि चार प्रकारकी है ॥ प्रकृति। उपादान। काल। भाग्य ये उनके नाम हैं जैसे किसी ने किसी को उपदेश किया कि प्रकृतिही जड़ चेतन के भेदको करती है और तीनों गुणोंकी साम्यावस्था का नामही प्रकृति है और महदादिक उसके कार्य्य हैं इनके जाननेसेही मोक्ष होती है ऐसा सुनकर जब वह पुरुष प्रकृति को और उसके कार्य्यों को जानकर सन्तुष्ट हो जाता है और ध्यान और अभ्यासादिकों को त्याग देता है तो उसकी इस अवस्था का नाम प्रकृतितुष्टि है तिस तुष्टिवाले को मोक्ष कदापि नहीं होती है और किसी ने किसी को ऐसा उपदेश किया कि संन्यास के लेने से और त्रिदण्ड के धारण करनेसेही मोक्ष होती है और वह उसके उपदेश से संन्यास त्रिदण्डादिकों को धारण करके तुष्ट होजाता है ॥ दण्डग्रहणमात्रेण नरोनारायणोभवेत ॥ और इस अर्थवाद वाक्य से अपने को कृतकृत्य मानता है उसकी इस अवस्था का नाम उपादानतुष्टि है इस तुष्टिवाले को भी मोक्ष नहीं होती है क्योंकि वह केवल उपादान याने साधनों काही ग्रहण करता है और आत्मतत्त्व को नहीं जानता है और विना ज्ञान के मोक्ष होती नहीं है इस कारण उसकी भी मुक्ति नहीं होतीहै और कोई ऐसा निश्चय करलेता है कि काल पाकर मोक्ष आपसे आपही होजावैगी साधन करनेसे क्या प्रयोजनहै? ऐसा सोचकर बैठ रहता है तो उसकी इस अवस्था का नाम कालाख्यतुष्टि है सो तिस पुरुष को भी मोक्ष नहीं होती है और कोई ऐसा

निश्चय करलेता है कि अगर भाग्य में मोक्ष होना बदा है तो मोक्ष होजावेगी ऐसा निश्चय करके जब वह तुष्ट होजाता है तो उसकी इस अवस्थाका नाम भाग्यतुष्टिहै इस तुष्टिवालेको भी मोक्ष नहीं होती है इस रीति से चार प्रकारकी तुष्टिका निरूपण किया गया ॥ वाह्यविषयोपरमात्पञ्च ॥ और वाह्यविषयों से उपरम होने के वास्ते पांच वाह्यतुष्टि हैं शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये ज्ञानेन्द्रियों के वाह्यविषय हैं इन विषयों के संग्रह करने में या रक्षा करने में जो दुःख होता है या इनके नाश होने पर जो दुःख होताहै या इनके संग्रह से याने इनके भोगने में जो इन्द्रियों को दुःख होता है या इनके भोगने में जो और जीवोंको दुःख होताहै उन दुःखों को अनुभव करके उनके भोगने से उपराम होना उपरमतुष्टि कही जाती है वृद्धिके निमित्त पशुओं की पालना करनी व्यापार करना किसी से प्रतिग्रह लेना सेवा करनी ये सब विषयों के संग्रह करनेके उपायहैं इसलिये प्रथम तो इनके संग्रह करनेमेंही दुःख होताहै फिर संग्रह करीहुई वस्तुकी रक्षा करनेमें दुःखहोताहै फिर जब उनका नाश होता है तब दुःख होता है विषयों के भोगने से इन्द्रियों की तृप्ति तो नहीं होती है किन्तु इच्छा अधिक बढ़ती जाती है इस वास्ते उनके संगसे भी दुःखही होता है ॥ और विषयभोगों से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है ॥ और हिंसा भी होती है क्योंकि हिंसाके विना भोग नहीं होता है इस कारण हिंसारूपी दोष विषयभोगसेही होता है इस प्रकार विषयों में दोष दृष्टि करके जो उनसे उपराम होना है सोई पांच उपरमतुष्टि कही जाती हैं पूर्वोक्त आध्यात्मिक चार तुष्टि और पांच बाह्य उपरम तुष्टि सब मिलकर नव तुष्टि हुई अन्य शास्त्रों में ये नव तुष्टि और

नामसे विख्यातहैं ॥ उनके नाम ये हैं ॥ अम्भः १ सलिल २ मोघ ३ वृष्टि ४ सूत्तम ५ पारम् ६ सुनेत्र ७ नारीकम् ८ अनुत्तमांभसिकम् ९ इन तुष्टियों के उलटा करने से अशक्ति के भेद होतेहैं इन्हीं का नाम बुद्धिवध कहा है वे ये हैं ॥ अनम्भः १ असलिल २ अमोघ ३ अवृष्टि ४ अनुत्तम ५ अपारम् ६ असुनेत्रम् ७ अनारीकं ८ अननुत्तमाम्भसिकम् ६ अव सिद्धिको दिखाते हैं ॥ ५० ॥

मूलम् ॥

ऊहःशब्दोऽध्ययनंदुःखविघातास्त्रयःसुहृत्प्राप्तिः॥
दानञ्च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेःपूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः ५१

पदच्छेदः ॥

ऊहः शब्दः अध्ययनम् दुःखविघाताः त्रयः सुहृत्प्राप्तिः दानम् च सिद्धयः अष्टौ सिद्धेः पूर्वःअङ्कुशः त्रिविधः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ऊहः	= विचार	अष्टौ	= आठ
शब्दः	= शब्द	सिद्धयः	= सिद्धि हैं
अध्ययनम्	= अध्ययन	च	= और
त्रयःदुःख विघाताः	= दुःख त्रय कानाश	पूर्वः	= पूर्वोक्त विपर्य्यय अशक्ति और तुष्टि
सुहृत्प्राप्तिः	= सुहृत्प्राप्ति	सिद्धेः	= सिद्धिके
च	= और	त्रिधा	= तीन
दानम्	= दान	अंकुशः	= अंकुश हैं
+एते	= ये		

भावार्थ ॥

ऊह नाम विचारका है जब कोई पुरुष इस प्रकार नित्य विचार करता है कि क्या सत्है यह लोक सत्य है या परलोक स्वर्गादिक सत्य हैं मोक्ष क्या पदार्थ है और किस प्रकार हम मोक्ष होवेंगे तब उसको ज्ञान उत्पन्न होता है और वह समझता है कि प्रधानसे पुरुष पृथक्है और पुरुषसे बुद्धि भिन्न है और अहङ्कारसे तन्मात्रादि भिन्न हैं एकादश इन्द्रिय और पंच महाभूत भी पृथक्हैं इस प्रकार जब पचीस तत्त्वों का ज्ञान उत्पन्न होता है तब उस ज्ञान से वह मोक्षको प्राप्त होता है इसी का नाम ऊहः प्रथमसिद्धि है शब्दः ज्ञानसे प्रधान पुरुष बुद्धि अहङ्कार तन्मात्रा एकादश इन्द्रिय और पञ्चमहाभूतों का भेदज्ञान उत्पन्न होता है फिर मोक्ष होती है यह शब्द नामक दूसरी सिद्धि है वेदों और शास्त्रों के अध्ययनसे पचीस तत्त्वोंके ज्ञानको प्राप्त होकरके मोक्षको प्राप्तहोजाताहै सो यह तीसरी अध्ययननामक सिद्धि है आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक ये तीनप्रकारके दुःखहैं इनका विघात यानै नाशभी तीन प्रकारकाहै॥तिस दुःखत्रयके नाशके वास्ते जो गुरुके समीप जाकर उपदेशको प्राप्त होकर मोक्षको होताहै सोई दुःखत्रय विघातनामक चतुर्थसिद्धि है यह चतुर्थसिद्धि दुःखत्रय के भेद से तीनप्रकार की है इसलिये तीन पूर्ववाली और तीन ये मिलकर छःसिद्धि हुई और जो कोई किसी सुहृद्द्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर मोक्ष को प्राप्त होजाता है सो वह सुहृद्नामक सप्तमी सिद्धि है और जो कोई विरक्त संन्यासियों को अन्न औषधिक मंडू आदिक देकर और सेवाकर उनसे ज्ञानको प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्त होताहै सोई दान नामक अष्टमी सिद्धि है और जो अन्य शास्त्रोंमें इन्हीं आठ

सिद्धियोंको दूसरे नामोंसे लिखाहै वे येहैं॥ तारं १ सुतारं २ तारतारं ३ प्रमोद ४ प्रमुदित ५ प्रमोदमान ६ रम्यक ७ सदाप्रमुदित ८ इन्हीं के विपर्यय का नाम बुद्धिवध है सो ये हैं अतार १ असुतार २ अतारतार ३ अप्रमोद ४ अप्रमुदित ५ अप्रमोदमान ६ अरम्यक ७ असदाप्रमुदित ८ ये आठ भी अशक्ति के ही अन्तर्भूत हैं॥ अशक्ति के जो अट्ठाईस भेद पूर्व कहेहैं सो ये हैं एकादशेन्द्रिय वध नवतुष्टि के विपर्यय और आठ सिद्धिके विपर्यय जो अभी कहे हैं सब मिलकर अट्ठाईस अशक्तिके भेद कहेजाते हैं और सिद्धिके जो तीन अंकुश रहते हैं सो विपर्यय अशक्ति तुष्टि नामों करके प्रसिद्ध हैं॥ जैसे हाथी अंकुशसे हाथीवान् के वश्य में होजाता है तैसेही विपर्यय अशक्तितुष्टिरूपी अंकुशों करके गृहीत पुरुष अज्ञानके वश रहताहै इस वास्ते इन विपर्ययादिक अंकुशों को त्याग करके सिद्धियोंकोही ग्रहण करै क्योंकि सिद्धियों के सेवन करने से तत्त्वज्ञान उत्पन्न होताहै और ज्ञानद्वारा पुरुष मोक्ष को प्राप्त होताहै और जो पूर्वकहाथा कि भावों करके अधिवासित हुआ हुआ लिंगशरीर गमनागमन करताहै॥ सो भाव धर्मादिक आठ कहे हैं वे भी बुद्धिके ही परिणाम हैं और विपर्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धिरूप करके परिणत हुये हुये बुद्धिकेही सर्गहैं इसी का नाम प्रत्ययसर्ग है और जो तन्मात्रासर्ग महाभूतों पर्यन्त कहाहै सो दोनों मेंसे एक करकेही पुरुषार्थ याने मोक्षकी सिद्धि होती है या दोनों सर्गों करके मोक्षकी सिद्धि होती है इस शङ्का का उत्तर आगेकी कारिका में कहते हैं॥ ५१॥

मूलम्॥

नविनाभावैर्लिंगं न विनालिंगेनभावनिर्वृत्तिः॥

लिंगाख्योभावाख्यस्तस्माद्विविधःप्रवर्त्ततेसर्गः५२

पदच्छेदः॥

न विना भावैः लिंगम् न विना लिंगेन भावनिर्वृत्तिः लिंगाख्यः भावाख्यः तस्मात् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
भावैः	प्रत्ययसर्ग से	तस्मात्	इस लिये
विना	विना	लिंगाख्यः	लिंगसंज्ञक
नलिंगम्	सूक्ष्म शरीर नहीं है	च	और
		भावाख्यः	भावसंज्ञक
लिङ्गेन	सूक्ष्मशरीरसे	द्विविधः	दो प्रकारकी
विना	विना	सर्गः	सृष्टि
भावनिर्वृतिः	बुद्धिकीसृष्टि	प्रवर्त्तते	प्रवृत्तहोती है॥
न	नहीं है		

भावार्थ॥

भावैः प्रत्ययसर्गैर्विनालिंगन्न ॥ भावनाम धर्म्मादिक बुद्धि के सर्गका है सो बुद्धिके सर्ग के विना तन्मात्रा याने लिंगशरीरकी स्थिति नहीं होती है क्योंकि पूर्व पूर्व संस्कार और अदृष्टोंके वशसेही उत्तर उत्तर शरीरकी प्राप्ति होती है और तन्मात्रा सर्गसे विंना भावोंकी सिद्धि नहीं होती है क्योंकि धर्म्मादिकोंकी सिद्धि स्थूल और सूक्ष्म शरीर करके होती है तिस में बीजांकुरन्याय करके अन्योन्याश्रय दोष नहीं आता है क्योंकि दोनों अनादि हैं और तत्तत् व्यक्तियों को तत्तज्जाति की अपेक्षा भी है

परन्तु तत्तत् व्यक्तियों को परस्पर की अपेक्षा नहीं है अर्थात् हरएक व्यक्ति को अपनी अपनी जाति की अपेक्षा है परन्तु दूसरी व्यक्ति की अपेक्षा नहीं है क्योंकि सब व्यक्तियां अनादि हैं इसवास्ते भावाख्य और लिंगाख्य दोप्रकार के सर्ग्ग प्रवृत्त होते हैं॥ ५२॥

मूलम्॥

अष्टविकल्पंदैवं तैर्यग्योनंपञ्चधाभवति॥ मानुष्यंत्वेकविधंसमासतोऽयं त्रिधासर्ग्गः॥ ५३॥

पदच्छेदः॥

अष्टविकल्पम् दैवम् तैर्य्यग्योनम् पञ्चधा भवति मानुष्यम् तु एकविधम् समासतः अयम् त्रिधा सर्ग्गः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
दैवम्	= देवसर्ग्ग याने देवतोंकीसृष्टि	मानुष्यम्	= मनुष्यसृष्टि
अष्टविकल्पम्	= आठप्रकार की है	एकविधम्	= एक प्रकार की है
तैर्य्यग्योनम्	= तिर्यक् सृष्टि	समासतः	= संक्षेपसे
पञ्चधा	= पांच प्रकार की	अयम्	= यह
भवति	= है	त्रिधा	= तीन प्राकार की
तु	= और	सर्ग्गः	= सृष्टि
		+कथितः	= कहीगई है॥

भावार्थ॥

पूर्व्वकारिका में प्रत्ययसर्ग्ग याने बुद्धिके सर्ग्ग का निरूपण

कर आये हैं अब इस कारिका में भूतों के सर्ग का निरूपण करते हैं॥ अष्टविकल्पं दैवम्॥ दैवसर्ग अर्थात् देवतों का सर्ग जो आठ प्रकारका है वे ये हैं॥ ब्राह्म १ प्राजापत्य २ सौम्य ३ ऐन्द्र ४ गान्धर्व्व ५ यक्ष ६ राक्षस ७ पैशाच ८ आठ प्रकार की देवतों की सृष्टि है पशु मृग पक्षी सरीसृप स्थावर ये पांच प्रकार की भूतों की तिर्य्यक् सृष्टि हैं॥ और मनुष्य योनि एकही प्रकार की है ये चौदह प्रकार की सृष्टि कही है सोई तीनों लोकों में तीनों गुणों करके व्याप्तहैं॥ ५३॥

तीनों लोकों में तीनों गुण व्याप्त होकर रहते हैं परन्तु किस लोक में कौन गुण अधिक रहता है इस वार्त्ताको अब दिखाते हैं

मूलम्॥

ऊर्ध्वंसत्त्वविशालस्तमोविशालश्चमूलतःसर्गः॥
मध्येरजोविशालोब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तम्॥ ५४॥

पदच्छेदः॥

ऊर्ध्वम् सत्त्वविशालः तमोविशालः च मूलतः सर्गः मध्ये रजोविशालः ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तम्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
ऊर्ध्वं =	ऊपरकेलोकोंमें या देवादि योनियों में	च =	और
सत्त्वविशालः =	सतोगुण अधिक है	मूलतः =	नीचके लोकोंमेंअथवा पशु आदि योनियों में

तमोविशालः=तमोगुण अधिक है	रजोविशालः=रजोगुण अधिक है
+च = और	+ एवम् = इस प्रकार
मध्ये = बीचके लोकों में अथवा मनुष्य योनि में	ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्त = ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यंत
	+ सर्वम् = सब
+ यः = जो	+गुणत्रयैः = तीनों गुणों करके
सर्गः = सृष्टि है	
तस्मिन् = उस में	+व्याप्तम् = व्याप्त है

भावार्थ ॥

॥ ऊर्ध्वंसत्त्वविशालः ॥ ऊपरके आठ ब्रह्मादि देवलोकों में सत्त्वगुण विशाल है अर्थात् सत्त्वगुणकाही विस्तार है और रजोगुण और तमोगुण दोनों न्यूनहैं ॥ तमोविशालोमूलतःसर्गः ॥ पशुआदि स्थावरयोनियों में संपूर्ण सृष्टि तमोगुण करकेही व्याप्त है अर्थात् पशुआदि योनियों में तमोगुण उत्कट रहता है और सत्त्वगुण और रजोगुण दोनों न्यून रहते हैं और मध्यमें याने मनुष्यलोक में रजोगुण उत्कट रहता है और सत्त्वगुण और तमोगुण दोनों न्यून रहते हैं इसीवास्ते मनुष्यों में दुःख अधिक होता है इसरीति से ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यंत जितनी योनिहैं सब में तीनों गुण न्यून अधिकभाव करके वर्त्ततेहैं लिंगसर्ग भावसर्ग और चतुर्दशप्रकार का भूतसर्ग ये सब मिलकर षोड़श प्रकारके सर्ग हैं सो सब प्रधानकृतही हैं ॥ ५४ ॥

मूलम् ॥

तत्रजरामरणकृतंदुःखं प्राप्नोतिचेतनःपुरुषः ॥

लिंगस्याविनिवृत्तेस्तस्माद्दुःखंस्वभावेन ॥ ५५ ॥

पदच्छेदः ॥

तत्र जरामरणकृतम् दुःखम् प्राप्नोति चेतनः पुरुषः लिंगस्य आविनिवृत्तेः तस्मात् दुःखम् च स्वभावेन ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तत्र	= देव मनुष्य तिर्यक्योनियोंमें	च	= और
चेतनः	= चैतन्य	तस्मात्	= इसी लिये
पुरुषः	= पुरुष याने आत्मा	लिंगस्य	= लिंगशरीरकी
जरामरणकृतम्	= जरामरण जन्य	आविनिवृत्तेः	= निवृत्ति न होने तक
दुःखम्	= दुःखको	पुरुषम्	= पुरुष को
प्राप्नोति	= प्राप्त होता है	स्वभावेन	= स्वभाव करके ही
		दुःखम्	= दुःख होताहै ॥

भावार्थ ॥

तत्रेति ॥ तिन देवता आदिक योनियों में जरामरणकृत दुःख को चेतन पुरुषही प्राप्त होता है प्रधान बुद्धि अहङ्कार तन्मात्रा आदिक जरामरणकृत दुःखको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ प्र० ॥ देवता आदिक योनियों में कितने कालतक पुरुष दुःखको प्राप्त होता है ॥ उ० ॥ लिंगस्याविनिवृत्तेः ॥ यावत्पर्य्यन्त लिंगशरीर की निवृत्ति नहीं होती है तावत्पर्य्यन्त पुरुष दुःखको प्राप्त होता है ॥ प्र० ॥ जब दुःखादिक बुद्धिके धर्म्म हैं ॥ चेतन पुरुष के नहीं तब पुरुष में दुःखादिक कैसे होते हैं ॥ उ० ॥ पुरिलिंगेशेते इति पुरुषः॥

लिंगशरीररूपी पुरी में जो शयन करै याने व्याप्त होकर रहै उसका नाम पुरुष है सो पुरुष का सम्बन्ध लिंगशरीरके साथ होने से लिंगशरीरके धर्म्म जो दुःखादिकहैं वे पुरुषमें भी प्रतीत होनेलगते हैं और सम्बन्ध के छूटने से फिर वे नहीं रहते हैं और जिस वास्ते सब पुरुषों का सम्बन्ध अपने अपने लिंगशरीर के साथ अनादिकाल से चला आता है इसी वास्ते सब जीवोंको जरा मरणादिक दुःखभी होते हैं सम्बन्ध के नाश होने पर दुःखकाभी नाश होजाताहै इसी वास्ते कहाहै कि ॥ लिंगस्याविनिवृत्तेः ॥ महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्चतन्मात्रा आदिकों का बनाहुआ जो लिंगशरीरहै तिस में यावत्पर्य्यन्त पुरुषका प्रवेश है तावत्पर्य्यन्त पुरुषको संसार बनाहै अर्थात् तीनों लोकों में जबतक लिंगशरीर का नाश नहीं होता है तबतक पुरुष को जन्म मरणादि संसार बना रहता है याने आवागमन उसका होता रहता है और जब लिंगशरीर का नाश होता है तब पुरुष मोक्षको प्राप्त होताहै फिर उसको जरामरणादिक दुःख नहीं होता है सो मोक्ष पचीस तत्त्वों के ज्ञान करके होती है॥ और तिसी ज्ञान करके लिंगशरीर भी नाश होता है यह प्रधान है यह बुद्धि है यह अहङ्कार है ये पञ्चतन्मात्रा हैं ये एकादश इन्द्रियहैं ये पांच महाभूत हैं इनसे विलक्षण पुरुषहै इस प्रकारके तत्त्वों के ज्ञानसे लिंगशरीर का नाश होताहै और पुरुष की मुक्ति होती है॥ ५५॥

प्र०॥ आरम्भ प्रवृत्तिका निमित्त क्या है॥ उ०॥

मूलम्॥

इत्येषप्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्य्य-

न्तः ॥ प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थइव परार्थआ-
रम्भः ॥ ५६ ॥

पदच्छेदः ॥

इति एषः प्रकृतिकृतः महदादिविशेषभूतपर्य्यन्तः
प्रति पुरुषविमोक्षार्थम् स्वार्थः इव परार्थःआरम्भः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इति	= इसप्रकार	एषः	= यह
महदादि विशेष भूत पर्य्यन्तः	= महत्तत्त्व से लेकर महाभूतों तक	आरम्भः	= आरम्भ
		स्वार्थइव परार्थः	= स्वार्थकीतरहपरार्थ
प्रकृतिकृतः	= प्रकृतिकाही कियाहुआ	प्रतिपुरुषविमोक्षार्थम्	= हरएक पुरुषकीमुक्तिके वास्ते है

भावार्थ ॥

इत्येषः ॥ इति अव्यय है यह समाप्ति अर्थ में आताहै और निर्देश याने यहां से यहांतक दिखाने के अर्थमें भी आता है सो दिखाते हैं ॥ महदादिविशेषभूतपर्यन्तः प्रकृतिकृत आरभः ॥ महत्तत्त्वसे लेकर महाभूतों पर्यन्त जितना आरम्भ है सो सब प्रकृतिकाही कियाहुआ है प्रथम प्रकृति से महत्तत्त्व हुआ फिर महत्तत्त्व से अहङ्कार हुआ तिस अहङ्कारसे तन्मात्रा और एकादश इन्द्रिय हुए फिर तन्मात्रासे पांच महाभूत हुए इस रीतिसे प्रकृतिने ही आरम्भ याने जगत्का आरम्भ किया न ईश्वरने किया और न किसी पुरुषने किया प्रतिपुरुषविमोक्षार्थ ॥ देव मनुष्य तिर्यगादि

योनियों में प्राप्त हुये जो पुरुष हैं तिनकी मुक्तिके लिये प्रकृतिका आरम्भ है जैसे ओदन जो भात है तिसकी कामनावाला पुरुष ओदन के पाक करने में प्रवृत्त होताहै और जब ओदन पकजाता है तब तिससे निवृत्त होकर हटजाता है तैसेही हरएक पुरुषकी मुक्तिके लिये प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है जिस पुरुषकी मुक्ति होजाती है उस पुरुषके प्रति फिर प्रकृति प्रवृत्त नहीं होतीहै किंतु तिससे हट जातीहै बाकीके पुरुषोंके प्रति तिसकी प्रवृत्ति बराबर बनीरहतीहै॥ प्र०॥ किस प्रकार प्रकृतिका आरम्भ होताहै॥उ०॥ स्वार्थ इवपरार्थ आरम्भः॥ स्वार्थ की तरह परार्थ आरम्भ होता है जैसे कोई पुरुष अपने कार्यको त्याग करके मित्रके कार्य को करताहै इसी प्रकार प्रधान भी अपने अर्थको त्यागकरके पुरुषके भोग और मोक्षकेलिये प्रवृत्त होती है और पुरुष प्रधानका कोई उपकार नहींकरताहै और प्रधान अपने वास्ते कुछ भी नहीं करती है शब्दादिक विषयों का ज्ञान और गुणों से पुरुष का भेदज्ञान भी पुरुषके लिये ही करती है तीनों लोकों में प्रधानही प्रथम शब्दादिक विषयों में पुरुषकी योजनाको करती है और फिर अन्तमें मोक्षमें जोड़देती है पुरुष अकर्त्ता है याने कुछ नहीं करता परन्तु भोक्ता है॥ ५६ ॥प्र०॥ जब प्रधान अचेतन याने जड़है और पुरुष चेतन है तब फिर कैसे जड़ प्रधान तीनोंलोकोंमें पुरुषको विषयोंके साथ जोड़ती है और अन्त में मोक्ष कराती है ॥ जड़में तो प्रवृत्ति बनतीही नहीं ॥ उ० ॥ यह सत्य है परन्तु अचेतनोंमें भी प्रवृत्ति और निवृत्ति देखी है सो दिखाते हैं॥

मूलम्॥

वत्सविवृद्धिनिमित्तंक्षीरस्ययथाप्रवृत्तिरज्ञस्य॥

पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथाप्रवृत्तिःप्रधानस्य ॥५७॥

पदच्छेदः ॥

वत्सविवृद्धिनिमितम् क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिः अज्ञस्य पुरुषविमोक्षनिमित्तम् तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे	तथा	तैसेही
अज्ञस्य	जड़	प्रधानस्य	प्रधानकीभी
क्षीरस्य	दुग्ध की	प्रवृत्तिः	प्रवृत्ति
+ प्रवृत्तिः	प्रवृत्ति	पुरुषस्य	पुरुष की
वत्सविवृद्धिनिमित्तम्	बछरेकी वृद्धिके निमित्त	विमोक्षनिमित्तम्	मुक्ति के निमित्त
+ भवति	होती है	+भवति	होती है ॥

भावार्थ ॥

जैसे गौ करके भक्षण कियेहुए तृणादिक दुग्धभाव को प्राप्त होकर वत्सकी वृद्धिको याने पुष्टिको करताहै और जब बछरा पुष्ट होजाताहै तब दुग्ध भी निवृत्त होजाताहै याने सूखजाताहै वैसेही जड़ प्रधानकी प्रवृत्ति भी पुरुषके मोक्षके लिये होती है जब पुरुष मुक्त होजाताहै तब प्रधान भी पुरुषसे हटजाती है॥ ५७॥

मूलम् ॥

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थंयथाक्रियासुप्रवर्त्ततेलोकः॥
पुरुषस्यविमोक्षार्थंप्रवर्त्तते तद्वदव्यक्तम् ॥ ५८ ॥

पदच्छेदः ॥

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थम् यथा क्रियासु प्रवर्त्तते लोकः पुरुषस्य विमोक्षार्थम् प्रवर्त्तते तद्वत् अव्यक्तम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
यथा	जैसे	तद्वत्	तैसे
लोकः	लोक	पुरुषस्य	पुरुष की
औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थम्	इच्छाकी निवृत्तिके वास्ते	विमोक्षार्थम्	मुक्तिकेलिये
क्रियासु	क्रियामें	अव्यक्तम्	प्रधान भी
प्रवर्त्तते	प्रवृत्तहोतेहैं	प्रवर्त्तते	प्रवृत्त होती है

भावार्थ ॥

जैसे लोकमें इष्टवस्तु की इच्छा की निवृत्ति के वास्ते पुरुष क्रियामें प्रवृत्त होता है अर्थात् जब किसी पुरुष को इष्टवस्तु के प्राप्त करने की इच्छा होती है तब उस वस्तुकी प्राप्तिके वास्ते गमनागमनरूप क्रियामें वह प्रवृत्त होता है और जब वह वस्तु प्राप्त होजाती है तब वह निवृत्त होजाता है तैसेही पुरुषकी मुक्ति के लिये प्रधानभी प्रवृत्त होती है और पुरुष को शब्दादि विषयोंका उपभोग कराके और गुणों से उसको भेदज्ञान कराके स्वयं निवृत्त हो जाती है ॥ ५८ ॥

मूलम् ॥

रङ्गस्यदर्शयित्वानिवर्त्ततेनर्त्तकीयथानृत्यात् ॥
पुरुषस्यतथात्मानंप्रकाश्यनिवर्त्ततेप्रकृतिः ॥ ५९ ॥

पदच्छेदः ॥

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात् पुरुषस्य तथा आत्मानम् प्रकाश्य निवर्त्तते प्रकृतिः ॥

अन्वयः	पदार्थ
यथा	= जैसे
नर्त्तकी	= वेश्या
रङ्गस्य	= सभाको
नृत्यम्	= नाच
दर्शयित्वा	= दिखाकर के
नृत्यात्	= नाचने से
निवर्त्तते	= निवृत्त होजाती है

अन्वयः	पदार्थ
तथा	= तैसे
प्रकृतिः	= प्रकृतिभी
पुरुषस्य	= पुरुषको
आत्मानम्	= अपनेनृत्यको
प्रकाश्य	= दिखाकर
निवर्त्तते	= निवृत्त होजाती है

भावार्थ ॥

जैसे नर्त्तकी जो वेश्या है सो शृङ्गारादि रसों करके इतिहासादि भावों करके तथा गीत और वाजों के सहित अपनी नृत्यकारी को सभाके प्रति दिखाकरके अपने कार्य्य को सिद्ध करके पश्चात् नृत्यकारी से हटजाती है तैसे प्रकृति भी पुरुषात्मा को अपना नृत्य दिखाकर अर्थात् बुद्धि अहङ्कार तन्मात्रा इन्द्रिय महाभूत इनसे संयुक्त अपने को दिखाकर पुरुष से निवृत्त होजाती है ॥ ५९ ॥ कौन इस प्रधान के निवृत्त करनेका हेतु है सो दिखाते हैं ॥

मूलम् ॥

नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः ॥

गुणवत्यगुणस्यसतस्तस्यार्थमपार्थकंचरति॥६०॥

पदच्छेदः॥

नानाविधैः उपायैः उपकारिणी अनुपकारिणः पुंसः गुणवती अगुणस्य सतः तस्य अर्थम् अपार्थकम् चरति॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
नानाविधैः	= नानाप्रकारके	अनुपकारिणः	= अनुपकारी
उपायैः	= उपायों करके	अगुणस्य	= गुणरहित
उपकारिणी	= उपकार करनेवाली	सतः	= नित्य
च	= और	पुंसः	= पुरुषको
गुणवती	= गुणवाली	अपार्थकम्	= व्यर्थ ही
प्रधानं	= प्रधान	तस्यार्थम्	= उसके अर्थ
		चरति	= चेष्टाकरती है।

भावार्थ॥

गुणवती॥ गुणवाली और उपकारकरनेवाली प्रकृति नाना प्रकार के उपायोंकरके अनुपकारी पुरुष के लिये चेष्टा करती है अर्थात् देव मनुष्य तिर्यगादि योनियों में सम्बन्ध कराके और सुख दुःख मोहभावको और शब्दादिक विषयोंको प्राप्तकराके और फिर नानाप्रकारके उपायोंसे अपने को प्रकाशकरके पश्चात् पुरुष को ऐसा ज्ञान करातीहै कि मैं अन्यहूं तू अन्य है और जब पुरुष को ऐसा ज्ञान होजाता है तब आप भी पुरुष से हटजाती है पुरुष जो नित्य है उसकी इच्छा को पूर्ण करती है और उसके बदले में

कुछ नहीं चाहती है जैसे कोई परोपकारी पुरुष सब पर उपकार करता है परन्तु अपने प्रत्युपकारकी याने बदलेकी इच्छा नहीं करता है इसी प्रकार प्रकृति भी पुरुषके लिये उपकार करती है पश्चात् पुरुषको अपना स्वरूप दिखलाकर निवृत हो जातीहै ॥६०॥

मूलम् ॥

प्रकृतेःसुकुमारतरंनकिञ्चिदस्तीतिमेमतिर्भवति याद्दष्टास्मीतिपुनर्नदर्शनमुपैतिपुरुषस्य ६१ ॥

पदच्छेदः ॥

प्रकृतेः सुकुमारतरम् न किंचित् अस्ति इति मे मतिः भवति या दृष्टा अस्मि इति पुनः न दर्शनम् उपैति पुरुषस्य ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रकृतेः	प्रकृतिसे	+दृष्टाअस्मि	मैंपुरुषकरके देखीगईहूं
सुकुमारतरम्	अत्यन्तकोमल	इति	इसप्रकार
किञ्चित्	और कोई वस्तु	+यदा	जब
न	नहीं	+सा	वह
अस्ति	है	+जानाति	जानतीहै
इति	ऐसी	तदा	तब
मे	मेरी	पुनः	फिर
मतिः	मति	पुरुषस्य	पुरुषके
भवति	है	दर्शनम्	दर्शनको
या	जो	न	नहीं
		उपैति	प्राप्तहोतीहै

भावार्थ ॥

मेरी बुद्धिमें प्रकृति से वढ़कर और कोई सुकुमार वस्तु नहीं है क्योंकि प्रकृति पुरुषका उपकार करती है और जब उसको यह मालूम होताहै कि मैं इस पुरुष करके देखीगईहूं तो फिर पुरुषकी दृष्टिका गोचर नहीं होती है और जिस पुरुषको विवेकज्ञान होताहै उससे फिर वह हटजाती है ईश्वरवादी ईश्वरकोही कारण मानते हैं और कहते हैं कि अज जो जीवात्मा है सो तो असमर्थ है परंतु ईश्वर करके प्रेरित हुआ हुआ स्वर्गको या नरकको सुख दुःख भोगार्थ गमन करता है इस वास्ते जीवके भोग और मोक्ष के देने में ईश्वरही कारण है और स्वभाववादी कहते हैं कि स्वभावही सबमें कारण है हंसों को किसने विचित्ररंगका वनाया है स्वभावनेही उनको ऐसा वनाया है इस वास्ते स्वभावही कारणहै अव तिन सवके मतको सांख्यशास्त्रके आचार्य्य खंडन करके अपने मतको सिद्ध करते हैं और कहते हैं कि निर्गुण होने से ईश्वर सगुणरूप प्रजाको उत्पन्न नहीं करसक्ता है और न निर्गुणसें सगुण की उत्पत्ति होसक्ती है और जब जीवात्मा भी निर्गुणहै तव उससे भी प्रजा किसी प्रकार उत्पन्न नहीं होसक्ती है इस वास्ते सगुण प्रकृति से सगुणप्रजाकी उत्पत्ति वनसक्ती है और जैसे शुक्ल वर्णवाले तंतुवों से शुक्लही वर्णवाला पट उत्पन्न होता है और कृष्ण तंतुवोंसे कृष्णही वर्णवाला पट उत्पन्न होता है वैसेही त्रिगुणात्मक प्रधानसे त्रिगुणात्मक तीनों लोकभी उत्पन्न होते हैं यह वार्ता अनुभवमें भी आती है और निर्गुण ईश्वर से सगुण लोकों की उत्पत्ति वनती नहीं क्योंकि अयुक्त है और न ऐसा अनुभव में आताहै इसीतरह निर्गुण पुरुषसे भी सगुण जगत्की उत्पत्ति नहीं

बनती है कालवादी कालकोही कारण मानते हैं और कहते हैं कि कालःपञ्चास्ति भूतानि कालःसंहरते जगत्। कालः सुप्तेषु जागर्ति कालोहि दुरतिक्रमः॥१॥ कालमें ही पांच भूत स्थित हैं कालहीजगत्को उत्पन्न करता है कालही उसको संहार करके अपनेमें लय करलेता है कालही पुरुषोंके सोनेपर जागताहै काल बड़ा दुरतिक्रम है किसी करके यह लंघन नहीं किया जासक्ता है॥ कालवादी का मत भी ठीक नहीं है क्योंकि काल नाम है क्षण पल दिन मासादि क्रियाका सो क्रिया सूर्य्यके आश्रित है और सूर्य्य चूंकि उत्पत्तिनाशवाला है इस लिये काल भी उत्पत्तिनाशवाला है इसीवास्ते काल भी कारण जगत्का नहीं होसक्ताहै॥ व्यक्त अव्यक्त और पुरुष येही तीन पदार्थ हैं उन्हीं के अन्तर्भूत काल भी है इसी लिये व्यक्तके सहित सर्वका कारण अव्यक्तहै सोई प्रधान इस जड़ जगत् का भी कारण है और चूंकि स्वभाव भी जगत् के अन्तर्भूत है इस वास्ते स्वभाव कारण नहीं होसक्ता है प्रकृति अनादि है इसका कोई कारण नहीं है और पुरुषको कृतार्थ करके यह फिर उसके दृष्टिगोचर नहीं होतीहै इसवास्ते ईश्वरादि जगत् का कारण नहीं है प्रकृतिही कारणहै॥ ६१॥

मूलम्॥

तस्मान्नबंध्यतेनापिमुच्यतेनापिसंसरतिकश्चित्॥
संसरतिबध्यतेमुच्यतेचनानाश्रयाप्रकृतिः॥ ६२॥

पदच्छेदः॥

तस्मात् न बध्यते न अपि मुच्यते न अपि संसरति कश्चित् संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
तस्मात्	= इस लिये	परन्तु	= परन्तु
कश्चित्	= कोई पुरुष	नानाश्रया	= नानायोनियों को आश्रय करती हुई
न	= न	प्रकृतिः	= प्रकृति
अपि	= तो	अपि	= ही
बध्यते	= बंधता है	बध्यते	= बंधायमान होती है
न	= न	च	= और
मुच्यते	= मुक्त होताहै	मुच्यते	= मुक्त होती है
अपि	= और		
न	= न		
संसरति	= संसारी होताहै		

भावार्थ ॥

पुरुष न बन्धायमान होताहै न मुक्त होताहै और न जन्म मरणरूपी संसारको प्राप्त होता है प्रकृतिही नाना देव मनुष्य तिर्यगादि योनियों को प्राप्त होती है और उन्हीं तिर्यगादि योनियोंके आश्रयभूत बुद्धि अहंकार पञ्चतन्मात्रा एकादश इन्द्रिय और पंच महाभूत को प्राप्त होकर बन्धायमान होतीहै मुक्त होती है और जन्म मरणरूपी संसारको भी प्राप्त होती है ॥ प्र० ॥ जब कि पुरुष स्वभावसे ही मुक्त है और सर्वगत भी है तब फिर वह संसारको क्यों प्राप्त होताहै? आना जाना अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके वास्ते होता है सो उसको है नहीं ॥ उ० ॥ उपाधि करके पुरुषको सांसारित्व है वास्तव में नहीं है इसीवास्ते प्रकृति पुरुषके भेदज्ञानसे ही पुरुष को अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और उसी करके पुरुष केवल

शुद्ध मुक्तस्वरूप हुआ अपने स्वरूपमें स्थित होता है और जिस कारण पुरुषको बन्धही है उसीकारण उसको मोक्ष भी नहीं है उपाधि के सम्बन्धसे पुरुषमें बन्धकी प्रतीति होती है उपाधिके नाश होने पर उसको न बन्ध है न मोक्ष है और प्रकृतिही अपनेको बन्धायमान करती है वही अपने को छुड़ाती है जहांपर सूक्ष्म शरीर त्रिविध करणों करके है वहीं पर तीन प्रकारके बन्ध करके प्रकृति बन्धायमान होती है वे तीन प्रकारके बन्ध ये हैं ॥ प्राकृतबन्ध वैकृतबन्ध, दाक्षिणिकबन्ध, जिनका व्याख्यान पूर्व होचुका है इन बन्धनों से सूक्ष्मशरीर धर्म्माऽधर्म करके बद्ध है और ज्ञान करके तिनमें निवृत्तहै ॥ ६२ ॥ यदि प्रकृति ही बन्धायमान होती है फिर वही मुक्त होती है तब वह किसकरके ऐसी होती है ॥

मूलम् ॥

रूपैःसप्तभिरेवबध्नात्यात्मानमात्मनाप्रकृतिः॥
सैवचपुरुषार्थंप्रतिविमोचयत्येकरूपेण॥ ६३ ॥

पदच्छेदः ॥

रूपैः सप्तभिः एव बध्नाति आत्मानम् आत्मना प्रकृतिः सा एव च पुरुषार्थम् प्रति विमोचयति एकरूपेण ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
प्रकृतिः	= प्रधान	रूपैः	= रूपोंकरके
आत्मना	= अपने	एव	= भलीप्रकार
आत्मानम्	= आपको	बध्नाति	= बांधतीहै
सप्तभिः	= सात	च	= और

सा = वही	एक रूपेण = {एकरूपकरके यानेज्ञानकरके
एव = निश्चयपूर्वक	प्रतिवि मोचयति = {अपनेकोछु- ड़ालेतीहै
पुरुषार्थम् = पुरुषकेअर्थ	

भावार्थ ॥

धर्म १ वैराग्य २ ऐश्वर्य ३ अधर्म ४ अज्ञान ५ अवैराग्य ६ अनैश्वर्य ७ ये सात प्रकृति के रूप हैं इन्हीं करके प्रकृति अपनेको आप बांधती है और पुरुषके कार्य के सिद्ध होने पर उन बन्धनों से ज्ञान करके अपनेको मुक्तभी करती है ६३ ॥ प्र० ॥ किस प्रकार वह ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ उ० ॥

मूलम् ॥

एवंतत्त्वाऽभ्यासान्नास्तिनमेनाहमित्यपरिशेषम्॥अविपर्ययाद्विशुद्धंकेवलमुत्पद्यतेज्ञानम्॥ ६४ ॥

पदच्छेदः ॥

एवम् तत्त्वाभ्यासात् न अस्ति न मे न अहम् इति अपरिशेषम् अविपर्ययात् विशुद्धम् केवलम् उत्पद्यते ज्ञानम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
न = न		अस्मि = हूं	
मे = मेरा		न = न	
अस्ति = है		किञ्चित् = कुछ	
न = न		अस्ति = है	
अहम् = मैं		एवम् = इसप्रकार	

अविपर्ययात् = संशयरहित	विशुद्धम् = अतिशुद्ध
तत्त्वाभ्यासात् = तत्त्वोंके विचार से	केवलम् = मोक्षदायक
अपरिशेषम् = अहंकाररहित	ज्ञानम् = आत्मज्ञान
	उत्पद्यते = उत्पन्नहोता है

भावार्थ॥

पूर्वोक्त क्रम करके पंचविंशतितत्त्वों के अभ्याससे ज्ञान इस प्रकार उत्पन्न होता है कि यह प्रकृति है यह पुरुषहै प्रकृति से पुरुष भिन्नहै ये पञ्च तन्मात्राहैं ये एकादश इन्द्रियहैं ये पांच महाभूतहैं ऐसा तत्त्वों का भेदज्ञान पुरुषको जब उत्पन्न होता है तब पुरुष ऐसा अनुभव करताहै कि न तो मेरे ये तत्त्व हैं और न मैं तत्त्वरूपहूं और न मेरा यह शरीर है मैं इन तत्त्वों से भिन्नहूं और मेरे से ये प्रकृति आदि तत्त्व भिन्न हैं मेरा इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है मैं अभिमानरहित संशयरहित शुद्धस्वरूप मोक्षरूप हूं इस प्रकार का ज्ञानही मोक्ष का कारण है इसी ज्ञान करके पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है॥ ६४॥ प्र०॥ ज्ञानकी प्राप्तिहोने पर पुरुष क्या करताहै॥ उ०॥

मूलम्॥

तेननिवृत्तप्रसवामर्थवशात्सप्तरूपविनिवृत्ताम्॥
प्रकृतिंपश्यतिपुरुषःप्रेक्षकवदवस्थितःसुस्थः ६५॥

पदच्छेदः॥

तेन निवृत्तप्रसवाम् अर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम्
प्रकृतिम् पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवत् अवस्थितः सुस्थः॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अर्थात् =	अर्थकेवश से याने अर्थ के सिद्ध होने के कारण	प्रकृतिम् =	प्रकृति को
निवृत्तप्रसवाम् =	दूर होगया है उत्पन्न करने का धर्म जिसका	तेन =	तिस करके याने पूर्वोक्त
च =	और	ज्ञानेन =	ज्ञान करके
सप्तरूपविनिवृत्ताम् =	निवृत्त हो गये हैं सात रूप जिस के ऐसी	सुस्थः =	अक्रिय होता हुआ
		च =	और
		अवस्थितः =	स्वस्थ होता हुआ
		पुरुषः =	पुरुष
		प्रेक्षकवत् =	द्रष्टाकी नाईं
		पश्यति =	देखता है

भावार्थ ॥

जब पुरुष आत्मज्ञान को प्राप्त होता है तब तिस शुद्ध ज्ञान करके पुरुष प्रेक्षक की तरह प्रकृतिको देखता है अर्थात् जैसे सभा का परीक्षक स्वस्थ उदासीन अपने स्थानपर बैठाहुआ सभा को और नर्तकी को देखता है तैसे पुरुष भी नर्तकीरूपी प्रकृति को देखता है कैसी वह प्रकृति है कि निवृत्त होगये हैं बुद्धि अहंकारादि कार्य जिस में और निवृत्त होगये हैं बन्धनके हेतु धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य की उत्पत्ति करनी जिस में ऐसी प्रकृति को वह देखता है ॥ ६५ ॥

मूलम् ॥

दृष्टामयेत्युपेक्षक एकोदृष्टाहमित्युपरमत्यन्या॥
सतिसंयोगेऽपितयोःप्रयोजनंनास्तिसर्गस्य ६६ ॥

पदच्छेदः ॥

दृष्टा मया इति उपेक्षकः एकः दृष्टा अहम् इ-ति उपरमति अन्या सति संयोगे अपि तयोः प्र-योजनम् न अस्ति सर्गस्य ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
अहम्	मैं	उपरमति	उपरामहोतीहै
उपेक्षकः	साक्षीपुरुष	+तदा	तब
एकः	एकहूं	तयोः	तिन प्रकृति पुरुषके
मया	मुझकरके	संयोगेसति	फिरसंयोगहोनेपरभी
अन्या	प्रकृति	सर्गस्य	सृष्टिकरनेका
इति	इसप्रकार	प्रयोजनम्	प्रयोजन
दृष्टा	देखीगई है	न	नहीं
इति	ऐसी	अस्ति	है॥
दृष्टा	देखीहुईप्रकृति		
+ यदा	जब		
अपि	निश्चयकरके		

भावार्थ ॥

जैसे कोई उपेक्षक याने साक्षीपुरुष सभाको देखकरके कहता है कि मैंने इस सभाको और नर्तकी वेश्याको देख लिया है और

इसके गुणोंको भी जानलिया है ऐसा कह करके पश्चात् वह उप-
राम होजाता है तैसे आत्मा जो शुद्ध केवल पुरुष है वह भी प्र-
कृति के नाचको देखकर उससे उपराम होजाताहै और प्रकृति भी
कहतीहै कि एकजो केवल शुद्ध पुरुषहै तिसकरके मैं देखीगईहूं अ-
र्थात् मेरे कुटिलपनेको पुरुषने जान लियाहै ऐसा समझकरके वह
भी पुरुषसे उपराम होजाती है फिर उसके समीप नहीं आती है
प्रकृति एकहै और तीनों लोकोंकी उत्पत्ति का वही कारण है उस
से और कोई प्रकृति दूसरी नहीं है ॥ प्र० ॥ मूर्तिके भेद से और
जाति के भेदसे अर्थात् प्रकृति की व्यक्ति याने मूर्ति भिन्न है और
पुरुषकी मूर्ति भिन्न है प्रकृति में प्रकृतित्व जातिभेदक है और पु-
रुषमें पुरुषत्व जातिभेदक है इसलिये वे एक दूसरे से पृथक् हैं
परन्तु दोनों को व्यापक कहाहै और व्यापक होने से उनका सं-
योग वनाही रहताहै और संयोगही सृष्टिका कारणहै तव फिर भी
सृष्टि होनी चाहिये सृष्टिके न होने में क्या कारणहै॥ उ० ॥ यद्यपि
भेदज्ञान होने पर भी उन दोनों को व्यापक होनेसे उनका सं-
योग वनाभी है पर फिर सृष्टि नहीं होती क्योंकि सृष्टि करनेका प्र-
योजन वाकी नहीं रहा जैसे एक पुरुषको दूसरेका ऋण देना है
जवतक वह ऋण नहीं देता है तवतक उन दोनोंका झगड़ा
रहता है जव वह ऋणको देदेता है तव फिर दोनों परस्पर मिलते
भी हैं पर उनका वाद विवाद नहीं होताहै दोनों उदासीन होकर
एक दूसरे के साथ रहते हैं इसी प्रकार भेदज्ञान के पश्चात् प्रकृति
पुरुषका संयोग वनाभी रहता है और दोनों व्यापकभी हैं तव भी
सृष्टि नहीं होती है क्योंकि सृष्टिकरनेका कोई प्रयोजन वाकी नहीं
रहा ॥ ६६ ॥ प्र० ॥ यदि प्रकृति ऐसा कहै किज्ञानकी उत्पत्ति से

पुरुष की मुक्ति होती है हमारी क्यों नहीं होती तब इसका क्या उत्तर है ॥ उ० ॥

मूलम् ॥

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ॥
तिष्ठतिसंस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद्धृतशरीरः ॥ ६७ ॥

पदच्छेदः ॥

सम्यग्ज्ञानाधिगमात् धर्मादीनाम् अकारणप्राप्तौ तिष्ठति संस्कारवशात् चक्रभ्रमवत् धृतशरीरः ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
सम्यग्ज्ञानाधिगमात्	= यथार्थ आत्मज्ञानकीप्राप्तिहोनेसे	संस्कारवशात्	= संस्कार के वशसे
धर्मादीनाम्	= धर्म्मादिकों के	धृतशरीरः	= शरीरधारी योगी
अकारणप्राप्तौ	= कारणरहितहोने परभी	चक्रभ्रमवत्	= कुलालके चक्रकेभ्रमणकीतरह
		तिष्ठति	= रहताहै ॥

भावार्थ ॥

यद्यपि पञ्चविंशति तत्त्वोंके ज्ञानका नामही सम्यग्ज्ञानहै तथापि कर्मों के संस्कारों के वशसे योगी शरीरको धारण करता हुआ चक्रके भ्रमणकी तरह रहता है अर्थात् जैसे कुलालचक्र को भ्रमाकर और मृत्पिण्डको तिसपर धर करके घटको वनालेता है और

चक्रको त्यागदेता है तब भी वह चक्र अपने वेग करके कुछ दे-तक भ्रमता रहताहै इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होनेपर भी सं-स्कारों के वश से ज्ञानी पुरुष विनाही कारण के धर्मादिकों को प्राप्त होभी जावै तौभी वह बन्धन को नहीं प्राप्त होसक्ता है क्यों-कि वह संस्तरूप जो धर्मादिक कहे हैं वे आत्मज्ञान करके दग्ध हो-जाते हैं जैसे अग्नि करके भूंजाहुआ बीज फिर अंकुरको उत्पन्न नहीं करसक्ता है तैसेही ज्ञान करके दग्धहुये धर्म्मादिक भी फिर जन्ममरण के हेतु नहीं होसक्ते हैं यदि कहो ज्ञान करके वर्तमान धर्म अधर्म्मादिकों का नाश क्यों नहीं होता है तो सुनो प्रारब्ध कर्म भोग देकरके नाश होजाते हैं आगामी और संचित कर्म ज्ञा-नकरके दग्ध होते हैं इसी लिये शरीर पातके पश्चात् फिर ज्ञानी का जन्म नहीं होता है ॥ ६७ ॥

मूलम् ॥

प्राप्तेशरीरभेदेचरितार्थत्वात्प्रधानविनिवृत्तौ ॥
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयङ्कैवल्यमाप्नोति ६८ ॥

पदच्छेदः ॥

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ ऐका न्तिकम् आत्यन्तिकम् उभयम् कैवल्यम् आप्नोति ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
चरितार्थत्वात्	कृतकृत्य होनेके कारण	च	और
शरीरभेदे	शरीरकेनाश	प्रधानविनिवृत्तौ	प्रधान की निवृत्तिहोने पर
प्राप्ते	होने पर		

आत्यंतिकम्=अत्यन्त	वाली
ऐकान्तिकम्=नित्य ऐसी	कैवल्यम् = मुक्ति
उभयम् = दो गुण	आप्नोति = प्राप्त होतीहै॥

भावार्थ॥

जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है तब धर्म अधर्म का कारण जो संस्कार है वह नाश होजाताहै और जब शरीरपात होने पर ज्ञानी को चरितार्थ होने से याने कृतकृत्य होने से प्रधान की निवृत्ति होजाती है तब ऐकान्तिक और नित्यमुक्ति ज्ञानीको प्राप्त होती है ६८॥

मूलम्॥

पुरुषार्थंज्ञानमिदंगुह्यंपरमर्षिणासमाख्यातम्॥
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्तेयत्रभूतानाम्॥६९॥

पदच्छेदः॥

पुरुषार्थज्ञानम् इदम् गुह्यम् परमर्षिणा समाख्यातम् स्थित्युत्पत्तिप्रलयाः चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
इदम्	यह	चिन्त्यन्ते	चिंतन किये जाते हैं
गुह्यम्	गुह्य	परमर्षिणा	परमऋषिकपिल जी करके
पुरुषार्थज्ञानम्	मोक्षकेसाधनका ज्ञान	समाख्यातम्	कथन कियागयाहै
यत्र	जिस में		
भूतानाम्	भूतों की		
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाः	स्थिति उत्पत्तिऔर प्रलय		

भावार्थ ॥

पुरुषार्थ नाम मोक्ष का है तिस मोक्षके लिये पूर्वोक्त गुह्यज्ञान सारभूत परमऋषि कपिलदेवजी ने कथन किया है जिसमें भूतों की स्थिति उत्पत्ति और प्रलय का विचार है और जिसके विचार करने से भली प्रकार पञ्चविंशति तत्त्वों के ज्ञानकी प्राप्ति होती है कपिलमुनिकृत जो सांख्यशास्त्र है वह जीवों को संसार बन्धनसे छुड़ानेवाला है उसी पर गौडपादाचार्य्य का भाष्य अतिसुगम किया हुआ है ॥ ६९ ॥

मूलम् ॥

एतत्पवित्रमग्रयंमुनिरासुरयेऽनुकम्पयाप्रददौ ॥
आसुरिरपिपञ्चशिखायतेनचबहुधाकृतंतन्त्रम् ७०

पदच्छेदः ॥

एतत् पवित्रम् अग्रयम् मुनिः आसुरये अनुकम्पया प्रददौ आसुरिः अपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतम् तन्त्रम् ॥

अन्वयः	पदार्थ
एतत्	यहसांख्यशास्त्र
पवित्रम्	अतिपवित्र है
अग्रयम्	सब शास्त्रों में मुख्य है
मुनिः	कपिलमुनि
अनुकम्पया	कृपा करके
आसुरये	आसूरिमुनि के प्रति
प्रददौ	देतेभये याने कहते भये
आसुरिः	आसुरि मुनि
अपि	निश्चयकरके
पञ्चशिखाय	पञ्चशिखा के प्रति

ददौ = देते भये	इदम् = यह
तेन = तिस पञ्चशि-खा करके	तन्त्रम् = शास्त्र
बहुधा = बहुत प्रकारसे	कृतम् = विस्तार किया गया ॥

भावार्थ ॥

सब ज्ञानोमें पवित्र और प्रधान पंचविंशति तत्त्वों का ज्ञान है वह मोक्षका परमसाधन है उसको प्रथम आसुरिऋषिके प्रति देते भये यानी कहते भये फिर आसुरिऋषिने पंचशिखा मुनिको दिया तिस पंचशिखामुनि ने उसको बहुत विस्तार किया और अनेक ग्रन्थ सांख्यशास्त्रके बनाये ॥ ७० ॥

मूलम् ॥

शिष्यपरंपरयागतमीश्वरकृष्णेनचैतदार्याभिः ॥
संक्षिप्तमार्यमतिनासम्यग्विज्ञायसिद्धान्तम् ७१ ॥

पदच्छेदः ॥

शिष्यपरम्परया आगतम् ईश्वरकृष्णेन च एतत् आर्य्याभिः संक्षिप्तम् आर्य्यमतिना सम्यक् विज्ञाय सिद्धान्तम् ॥

अन्वयः	पदार्थ	अन्वयः	पदार्थ
+यत्	= जो		करके
एतत्	= यह सांख्य शास्त्र	शिष्यपरम्परया	= शिष्यपरंपरा द्वारा
आर्य्यमतिना	= श्रेष्ठ मति	आगतम्	= प्राप्त भया है
ईश्वरकृष्णेन	= ईश्वर कृष्ण	तस्य	= तिसके

सिद्धान्तम् = सिद्धान्तको
सम्यक् = भलीप्रकार
विज्ञाय = जानकरके
आर्य्याभिः = आर्य्याछंदमें
संक्षिप्तम् = संक्षेपसे
सः = उन्हों ने
रचितवान् = रचनाकिया

भावार्थ ॥

पूर्वोक्त पचीसतत्त्वों का ज्ञानसम्बन्धी जो सांख्यशास्त्र है सो गुरु शिष्य परंपरा करके ईश्वरकृष्ण को प्राप्त हुआ तिस ईश्वर कृष्ण श्रेष्ठ बुद्धिवाले ने उसको आर्य्याछन्द में संक्षेप से निरूपण किया ॥ ७१ ॥

मूलम् ॥

सप्तत्यांकिलयेऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्यषष्टितंत्रस्य ॥ आख्यायिकाविरहिताःपरवादविवर्जिताश्चापि ॥ ७२ ॥

पदच्छेदः ॥

सप्तत्याम् किल ये अर्थाः ते अर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य आख्यायिकाविरहिताः परवादविवर्जिताः च अपि ॥

अन्वयः पदार्थ
सप्तत्याम् = सत्तर कारिकावों में
किल = निश्चयकरके
ये = जो
अर्थाः = अर्थ हैं
ते = वे
अर्थाः = अर्थ
कृत्स्नस्य = सम्पूर्ण
षष्टितंत्रस्य = साठ तत्त्वों कातात्पर्य्य

आख्यायिका विरहिताः = कथाप्रसंग से रहित हैं | च अपि = और | परवादविवर्जिताः = निन्दा से रहित हैं॥

भावार्थ॥

साठ तत्त्वों सम्बन्धी सम्पूर्णविद्या संक्षेप से इस ग्रन्थ के सत्तर-कारिकामें ईश्वर कृष्णने कथानकरहित निरूपण कियाहै यह शास्त्र मनुष्यमात्रके मोक्षका कारक है॥ ७२॥

इति श्रीमद्बाबूजालिमसिंहविरचितासांख्य कारिकाभाषाटीकासमाप्ता॥

दो० जाके सांख्य विचारसों होत जगत कल्यान॥
वेदविदितमुनिकुलकलश जयतिकपिलभगवान १
कृष्णयज्वकी कारिका सांख्यशास्त्र को सार॥
गौडपाद आचार्य्य को तिनपै सरल विचार २
देवबानि में ग्रन्थ सो समुझिसकत बुधिवान॥
ताकीहौं भाषा करूं जे चाहत नर आन ३
नहिं विद्या नहिं बुद्धिबल पै यह दृढ़ विश्वास॥
"पंगु चढ़ैं गिरिवर गहन" जा प्रताप सो पास ४
पुरी अयोध्या के निकट अकबरपुर इकग्राम॥
जन्मभूमि कायस्थकुल जालिमसिंह सनाम ५

इति॥

भी ऊपर लिखे हुये के अनुसार भावार्थ स्पष्ट कियागया और समझने की सुगमता के लिये गुरु शिष्य संवाद पूर्वक पूर्ण ज्ञान लखाया है॥

मुंडकउपनिषद्भाषाटीका सहित, क़ीमत ≈)।

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित—जिसमें वादी प्रतिवादी के प्रश्नोत्तर से ब्रह्मका निर्णय व जगदुत्पत्ति व प्रत्येक अन्नादि का सम्भव व अग्निहोत्रादि क्रियाओंका विधान मन्त्रों द्वारा वर्णित है॥

तैत्तिरीयोपनिषद् भाषाटीकासहित, क़ीमत।-)।

पञ्चोलीयमुनाशङ्करनागरब्राह्मणकी भाषा टीकासहित—जिसमें तैत्तिरीय शाखा के प्रकट होनेका उदाहरण और स्वरमात्रा व वर्णों के उच्चारणकी शिक्षाका नियम व वर्णों के संबन्धरूप संहिताकी उपासना व बुद्धि व लक्ष्मीकी कामना वाले पुरुषों के अर्थ साधन जप और हवनादि की क्रियायें वर्णित हैं॥

ऐतरेयोपनिषद्भाषाटीकासहित, क़ीमत≈)॥

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मणकी भाषाटीका सहित—जिसमें आत्मा व ब्रह्मका निरूपण और प्राण व प्रणवकी उपासना की व्याख्या व संन्यासादि आश्रमों के लक्षण व धर्म अच्छे प्रकार वर्णित हैं॥

उपनिषद्सार, क़ीमत -)॥ पु०

मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, श्वेताश्वर, ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, छांदोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतकि, ब्राह्मण और मैत्री की भाषा टीका राजा शिवप्रसाद सितारैहिन्दने रचनाकर अपने पुत्र पौत्र मित्र बान्धव योग्य अधिकारियों के निमित्त छपवायाहै॥

छान्दोग्य उपनिषद् भाषा टीका, कीमत ॥=)।

पंडित यमुनाशङ्करजी कृत टीका भाषा ॥

ब्राह्मधर्म दोखंड में, गैरमतबा क़ीमत १) पु०

तथा प्रथमखंड गैरमतबा क़ीमत ॥=) पु०

तथा द्वितीयखंड गैरमतबा क़ीमत ।=) पु०

यह अत्युत्तम उपनिषद है इसको पंडित लक्ष्मणप्रसादजी ने बंगाली भाषा से हिन्दी भाषा में उल्थाकिया है मूलश्लोक और भाषा टीका समेत है ॥

(वेदान्त)

योगवासिष्ठ दोभागों में, क़ीमत ५॥) पु०

श्रीमद्भागवत भाषाटीकासंयुक्त ७) रु० पु० ॥

इस ग्रन्थ के उत्तम होनेमें कदापि सन्देह नहींहै—इसका भाषा तिलक ब्रजबोली में बहुतही प्याराहै आशय प्रत्येक श्लोकों का है क्यों न हो इस के तिलककार महात्मा ब्रजबासी अङ्गदजी शास्त्रीहैं—यह तिलक ऐसा सरलहै कि इसके द्वारा अल्प संस्कृतज्ञ पुरुषों का पूराकार्य निकल सक्ताहै—संस्कृत पाठकभी इससे श्लोकोंका पूराआशय समझ सक्तेहैं इसबार यह ग्रन्थ टैपके अक्षरों में उम्दा काग़ज़ सफ़ेद चिकना में छापागया है और विशेष विद्वान् शास्त्रियों के द्वारा शुद्ध कराया गया है जिससे बम्बई की छपीहुई पुस्तकसे किसी काम में न्यून नहीं है उम्दा तसावीर भीप्रत्येक स्कन्धमें युक्तहैं—आशाहै कि इस अमूल्य रत्न के लेने में महाशय लोग विलम्ब न करेंगे ॥

———